संचारी रोग

(*Communicable Diseases*)

डॉ. वाई. एस. भार्गव

एम बी बी, एस एफ आइ एस सी ई

उप मुख्य चिकित्सा एव स्वास्थ्य अधिकारी (स्वास्थ्य)

नागौर, राजस्थान

अंकुर प्रकाशन, बीकानेर



प्रकाशक

अंकुर प्रकाशन

अमर-कला निकेतन

हॉस्पिटल रोड, बीकानेर-334001





प्रथम संस्करण – जुलाई 1986

मूल्य 50/= रुपये



मुद्रक

जवाहर प्रेस

जेल रोड, बीकानेर

दो शब्द

स्वस्थ स्वास्थ्य एव निरोग शरीर ही सुखमय जीवन का आधार है । जब तक व्यक्ति का शरीर निरोग रहता है वह गतिशील एव क्रियाशील रहता है तथा उसे एक विशेष प्रकार की आनन्दमयी अनुभूति होती है । लेकिन जब व्यक्ति का शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है तो वह उदासी, मालिन्य, बेचैनी आदि का अनुभव करता है, उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है, शरीर क्षीण हो जाता है । अत शरीर को स्वस्थ व निरोग रखना आवश्यक है । लेकिन इनके लिए आवश्यक होगा कि हमे रोग तथा उसके निवारण के विषय म कुछ ज्ञान हो। रोग क्या है ? कैसे फैलता है ? रोग लक्षण क्या होते हैं ? रोग प्रसार के क्या माध्यम है तथा उन पर नियन्त्रण कैसे किया जा सकता है ? आदि ऐसे मुख्य बिन्दु है जिनके विषय म प्रत्येक व्यक्ति को सामान्य ज्ञान होना चाहिए ।

इन सभी बिन्दुओ को ध्यान म रखते हुए इस पुस्तक की रचना की गई है । सचारी रोगो (सक्रामक/छूत की बीमारियो) का हमारे जीवन म विशेष महत्व है । विश्व म करोडो व्यक्ति व बच्चे इन रोगो से प्रभावित होते है एव मौत के ग्रास बनते है । अत इनके विषय म हम सभी को ज्ञान होना चाहिए क्योकि विश्व के प्राय सभी देशो म यह रोग जन समुदाय को प्रभावित करते है । इनके प्रभाव से व्यक्ति अपने आपको कैसे बचा सकता है तथा जन समुदाय म रोग प्रसार को कैसे रोका जा सकता है आदि ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु है जिन पर प्रस्तुत पुस्तक म पूर्ण प्रकाश डाला गया है ।

तपेदिक, मलेरिया, कुष्ठरोग, खसरा, दस्त आदि अनेक ऐसे सक्रामक रोग है जो व्यक्ति व बच्चों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है । यद्यपि चिकित्सा विज्ञान की प्रगति ने इन रोगो पर किसी सीमा तक विजय प्राप्त कर प्राचीन धारणाओ को समाज से लुप्त कर दिया है । लेकिन फिर भी अभी कुछ धारणाए समाज म अपनी जडें जमाए हुए है जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न करती है जैसे रोग एक

ैवीय अभिशाप हैं, कुकर्मो का फल है, आदि। रोग निवारण के लिए आज भी तान्त्रिक व ज्योतिष मे विश्वास ह। गडे व ताबीज बनवाकर शरीर के विशेष अगो पर विशेष विधि द्वारा आज भी पहन जाते है।

प्रस्तुत पुस्तक मे जन समुदाय तक ज्ञान पहुँचाने के लिए विभिन्न सक्रामक रोगो के विभिन्न पहलुओ पर विस्तृत विवरण दिया गया है जैसे रोग क्या है ? उसके प्रसार के क्या कारण है ? रोग लक्षण, उपचार, निवारक उपाय आदि प्रत्येक बिन्दु पर सरल हिन्दी भाषा मे प्रकाश डाला गया है। आशा है यह पुस्तक सभी के लिए लाभदायक सिद्ध होगी तथा सन 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करने म भी सहायक होगी।

बीकानेर

1 जुलाई 1986

डॉ योगेन्द्रसिंह भार्गव

अनुक्रमणिका

सचारी रोग

(Communicable Diseases)



- रोग एवं सक्रमण
- रोगो का सचार
- सचारी रोगो के सचार माध्यम
- सचारी रोगो पर नियंत्रण
- सचारी रोगो का वर्गीकरण

संचारी रोग

(Communicable Diseases)

रोग

साधारण रूप मे रोग का अर्थ है शरीर मे स्वास्थ्य के सामान्य लक्षणो मे परिवर्तन आना या उनका विद्यमान न होना अथवा उनमे कमी आना। इस प्रकार की स्थिति व्यक्ति के शरीर मे किसी अंग या पूरे शरीर मे आ सकती है जिससे वह व्यक्ति कष्ट एव पीडा का अनुभव करता है। पीडित व्यक्ति को रोगी कहते हैं। यह पीडाए निम्न प्रकार की हो सकती है –

१ शारीरिक—चोट का लगना, ज्वर, फोडे-फुन्सी, शरीर मे दर्द आदि।

२ मानसिक—पागलपन, बैचेनी, उदासी आदि।

३ सामाजिक—परिवार अथवा समाज मे अपने आपको परिस्थितियो के अनुकूल न बना सकना, विचलित रहना आदि।

रोगो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है (क) सक्रामक (ख) असक्रामक। यहा पर सक्रामक रोगो के विषय मे वर्णन किया जा रहा है।

सक्रमण (Infection)

जब विकारी अभिकर्ता मनुष्य या पशु के शरीर मे प्रवेश कर स्वय की वृद्धि एव विकास करता है तो इस अवस्था को संक्रमण कहते हैं। इस

स्थिति मे शरीर की विभिन्न शक्तिया अपने को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न करती है। संक्रमण शरीर मे रोग का कारण बन भी सकता है और नही भी।

दूषित पदार्थ

जब विकारी अभिकर्ता शरीर, कपडो, बिस्तर, खिलौने, शैल्य यत्र एव औजार, पानी, दूध, खाद्य पदार्थ आदि पर विद्यमान हो तो वह पदार्थ, अग या वस्तु दूषित हो जाती है।

संक्रामक रोग

वे रोग जो मनुष्य या पशु के शरीर मे किसी संक्रमण द्वारा उत्पन्न होते है अथवा फैलते है।

ससर्गजन्य रोग

संक्रमित व्यक्ति के प्रत्यक्ष सम्पर्क या स्पर्श मे आने के कारण स्वस्थ व्यक्ति को रोग उत्पन्न हो जाते है। अन्य कारणो से भी सहमा रोग उत्पन्न हो सकते है।

सचारी रोग

यह विशिष्ट प्रकार के संक्रामक रोग हैं जो एक संक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ व सुग्राही व्यक्ति तक सीधे सम्पर्क द्वारा या परपोषी, सवाहक या पर्यावरण के माध्यम से विशेष विकारी अभिकर्त्ता (Infectious agent) या उसके विषैले उत्पादको के संक्रमण से उत्पन्न होते हैं। यह अभिकर्त्ता परजीवी (Parasite) जीवाणु (Bacteria) या विषाणु (Virus) हो सकते है।

सचारी रोग की परिभाषा के अ तर्गत दोनो ही प्रकार के रोग आते है — प्रत्यक्ष संक्रामक (Infectious) व ससर्गजन्य (Contagious) रोग अर्थात् संक्रमित व्यक्ति के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे आने के कारण दूसरे व्यक्ति को रोग उत्पन्न हो सकते है या अन्य विविध कारणो से सहमा रोग उत्पन्न हो सकते है। प्रथम को ससर्ग व द्वितीय को उपसर्ग की सज्ञा दी गई है। दोनो ही कारणो मे उत्पन्न रोग मे ग्रसित व्यक्ति की पूर्व शारीरिक अवस्था साधा-

रण रहती है एव जीवनचर्या भी सामान्य रहती है, अकस्मात ही रोग का आक्रमण होता है व व्यक्ति में रोग लक्षण दिखाई देने लगते है।

विभिन्न सचारी रोगो का वितरण विश्व के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में उस क्षेत्र के विकारी अभिकर्ता, परपोषी व पर्यावर्णीय तत्वो की परस्पर क्रिया पर निर्भर करता है। विकासशील देशो मे सचारी रोगो की रोकथाम को अधिक महत्व दिया जा रहा है एव इसे स्वास्थ्य सेवाओ की श्रेणी में प्राथमिकता देते हुए सन् 2000 ई० तक सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य रखा गया है।

रोगो का सचार (Transmission of diseases)

रोगो का सचार निम्नलिखित तत्वो पर निर्भर करता है -

विकारी जीवाणुओ के उद्गम स्त्रोत/सचयागार

व्यक्ति, पशु, सधिपाद प्राणी, पौधे, धूल आदि उद्गम स्रोत हो सकते हैं। इनमे से व्यक्ति ही मुख्य स्त्रोत हैं। यह स्त्रोत सक्रिय अवस्था के नए रोगी या रोग वाहक व्यक्ति हो सकते है। रोगवाहक व्यक्ति मे रोग के शयनिक लक्षण विद्यमान नही होते हुए भी उसके शरीर मे अभिकर्ता जीवित रहता है एव वश वृद्धि करता है। ऐसे व्यक्तियो के रक्त आदि परीक्षण के समय उनमे



कारक तत्व . जीवाणु विपाणु एव परजीवी

संवाहक

परपोषी

जीवाणु मिल सकते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति अपने शरीर मे विकारी अभिकर्ता को आश्रय देते है तथा किसी एक रोग विशेष के लिए संचयागार का काय करते है। रोगवाहक व्यक्ति अस्थाई या स्थाई/दीर्घकालीन हो सकते हैं। अस्थाई रोगवाहक विकारी अभिकर्ता को अल्प समय के लिए आश्रय देते है जबकि दीर्घकालीन रोगवाहक अनिश्चितकाल के लिए आश्रय देते हैं।

सुग्राही परपोषी

सुग्राही परपोषी – अर्थात् वह व्यक्ति, पशु या अन्य प्राणी जो आसानी से किसी संक्रमण को ग्रहण कर उस रोग के जीवाणुओं को अपने शरीर मे वृद्धि एवं विकास करने का अवसर प्रदान करें। संक्रमित जीवाणु परपोषी के शरीर मे श्वास नलिका, त्वचा, प्रजनन-मूत्राशय नलिका, मुख आदि माध्यमों से प्रवेश करते है। यह जीवाणु परपोषी के शरीर में एक से अधिक माध्यमों से भी प्रवेश कर सकते है। शरीर मे प्रवेश के बाद यह अपने जीवन व वृद्धि के लिए उपयोगी तन्तुओं का चयन कर लेते हैं। एक अवधि के बाद रोगाणु किसी अन्य माध्यम से शरीर के बाहर आते हैं तथा किसी स्वस्थ व्यक्ति (परपोषी) को अपना शिकार बनाते है। इस प्रकार इनकी जीवन क्रिया चलती है।

शरीर मे प्रवेश होने के बाद से रोग के लक्षण दिखाई देने की अवधि तक का समय, अंतर्विकास काल कहलाता है। यह अलग-अलग बीमारियों मे भिन्न होता है। इस अवधि में रोगाणु अपने वंश की वृद्धि करते है तथा जब इनका घनत्व (Density) इतना बढ जाता है कि परपोषी का शरीर अपने को सुरक्षित रख पाने मे असमर्थ हो जाता है, तब रोग के लक्षण दिखाई देने लगते है।

उपयुक्त वातावरण

वातावरण का अर्थ केवल मात्र पानी, वायु एवं धूल से ही नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से भी है जिनमे हम रहते है। वातावरण मे बाहरी तथा आंतरिक दोनो ही प्रकार की परिस्थितियां आती है।

अर्थात् वातावरण का तात्पर्य है सभी प्रकार की बाहरी परिस्थितियो एव प्रभावो का समूह जो जीवाणु एव व्यक्ति के व्यवहार तथा सामाजिक स्तर को जीवित एव विकसित करता है।

वातावरण को हम तीन भागो मे विभक्त कर सक्ते है – भौतिक, जैविक एव मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक। भौतिक वातावरण का तात्पर्य उन निर्जीव एव भौतिक वस्तुओ से हैं जो मनुष्य से निरन्तर पारस्परिक क्रियाए करती हैं जसे पानी, हवा, मिट्टी, मौसम, गर्मी, प्रकाश, विकीरण शोर आदि। यद्यपि मानव ने गत शताब्दियो मे भौतिक वातावरण के अनेक पहलुओ पर विजय प्राप्त कर स्वास्थ्य को स्वस्थ रखने मे सफलता प्राप्त की है। लेकिन असुरक्षित पीने का पानी, दूषित पर्यावरण आदि अब भी मानव स्वास्थ्य के लिए अभिशाप बने हुए है। वतमान मे मनुष्य ने स्वय कुछ पर्यावरण सम्बन्धी समस्याए उत्पन्न करली है जैसे धूल व वायु प्रदुषण, विकीरण, शोर आदि।

जैविक वातावरण से तात्पर्य उन जीवित वस्तुओ से है जो मनुष्य के चारो ओर निरन्तर बनी रहती है जैसे विषाणु, (Virus) जीवाणु, कीट, जीव-जन्तु, पौधे आदि। प्रत्येक जीवित वस्तु अपने जीवनयापन के लिए प्रयत्नशील रहती है, तथा इसी प्रक्रिया मे कुछ रोग उत्पत्ति के स्त्रोत, सक्रमण के सचयागार, रोग सवाहक एव मध्यवर्ती परपोषी बन जाते है।

मनुष्य तथा इन सबके मध्य अनुकूल वातावरण की स्थिति निरन्तर बनी रहती है लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियो मे रोग पनपने लगते है।

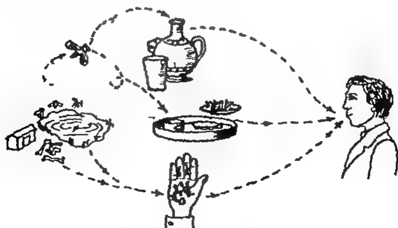
मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक वातावरण से तात्पर्य उन तत्वो से है जो मनुष्य के स्वास्थ्य, सामुदायिक कल्याण एव स्वास्थ्य सेवाओ से सम्बन्धित है। इनके अन्तर्गत सामाजिक व धार्मिक रीति-रिवाज, अन्ध विश्वास व्यक्तिगत आदतें, शिक्षा, रहन-सहन का स्तर, व्यवसाय, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था स्वास्थ्य, सेवाओ की उपलब्धि आदि आते है। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति का एक दूसरे से निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। किसी भी व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है। सामाजिक

समता, विषमता, व्यक्तिगत रुचि, विचारो (तनावपूर्ण वातावरण) के आदान-प्रदान के तरीके आदि सभी बिंदु व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है। यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति स्वयं की बीमारी के लिए एक अभिकर्ता (Agent) का कार्य करता है। अतः व्यक्ति स्वयं के लिए क्या और कैसे करता है, उस पर उसका स्वास्थ्य निर्भर करेगा। सिगरेट पीना या अन्य किसी नशीले पदार्थ का सेवन करना उसकी मनोवैज्ञानिक मनः स्थिति को प्रदर्शित करता है। इनके सेवन से फेफड़े का कैंसर तथा अन्य कई रोग हो सकते हैं। गरीबी, अतिप्रिय व घनिष्ट रिश्तेदार की मृत्यु, परीक्षा में असफलता, नौकरी का छूटना आदि अनेक बिंदु व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त सभी बिंदुओ से यह सिद्ध हो गया है कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अन्दर व बाहर के वातावरण, दोनो का संतुलित अवस्था में होना अति आवश्यक है।

संवाहक

संवाहक अर्थात् जीवाणुओ को एक स्थान से दूसरे स्थान, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ले आने वाला माध्यम है। रोग के जीवाणु एक स्वस्थ



संक्रमण विभिन्न माध्यमो से होता हुआ स्वस्थ व्यक्ति तक पहुंचता है।

व्यक्ति तक किसी एक माध्यम या विभिन्न माध्यमो द्वारा पहुँचते हैं। जैसे मलेरिया के रोगाणु मच्छर द्वारा हैजा, दस्त, आत्रशोथ, टायफॉयड आदि के रोगाणु मक्खी के द्वारा अथवा खाद्य पदार्थों के माध्यम से व्यक्ति तक पहुँच कर उसे रोग ग्रस्त करते है।

संचारी रोगो के सक्रमण माध्यम

सचारी रोगो का सक्रमण विकारी जीवाणुओ का उनके उपलब्धि स्थानो/सचयागारो से एक स्वस्थ सुग्राही व्यक्ति तक उपयुक्त पर्यावर्णीय स्थितियो मे कुछ निश्चित् माध्यमो द्वारा होता है। प्राय एक रोग के सक्रमण के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होती है लेकिन कभी-कभी कुछ रोगो के सक्रमण के लिए दो या दो से अधिक माध्यमो की आवश्यकता हो सकती है। सामान्यतया रोग प्रसार मे निम्नलिखित माध्यम ही क्रियाशील है –

(क) सम्पर्क सक्रमण (Contact transmission)
(ख) सवाहक सक्रमण (Vector transmission)
(ग) वायु सवाहित सक्रमण (Airborne transmission)
(घ) वाहक सक्रमण (Vehicle transmission)
(ङ) अपरा (Placenta) के माध्यम से होने वाले रोग।

सम्पर्क मे आने से रोग के जीवाणु उद्गम स्त्रोत से सुग्राही परपोषी तक पहुँच जाते हैं।

सम्पर्क सक्रमण

यह सक्रमण दो प्रकार से होता है–

(क) प्रत्यक्ष सम्पर्क (Direct contact)

एक सक्रमित व्यक्ति के प्रत्यक्ष शारीरिक सम्पर्क छूने या लैंगिक सम्पर्क मे आने वाले स्वस्थ सुग्राही व्यक्ति को रोग सक्रमण होता है। स्वस्थ व अस्वस्थ त्वचा, श्लेष्मकला आदि पर विकारी जीवाणु सीधे सक्रमण कर उसे सक्रमित कर देते है। रोग ग्रसित स्त्री या पुरुष के साथ पुरुष या स्त्री के सहवास से मैथुन जन्य रोगो (Sexually transmitted

diseases) की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है जैसे सुजाक (Gonorrhoea) उपदश/फिरग (Syphlis) आदि । दूषित पदार्थों के छूने से हाथ व ऊँगलियाँ दूषित हो जाती हैं फलस्वरूप इनके द्वारा खाए गए खाद्य पदार्थों के माध्यम से आन्त्र शोथ होने का भय रहता है ।

(ख) अप्रत्यक्ष सम्पर्क (Indirect contact)

किसी दूषित पदार्थ या तीसरे व्यक्ति के माध्यम से फैलने वाले रोग इसके अन्तर्गत आते हैं जैसे गलघोटू, क्षय रोग, छोटी चेचक खसरा, आन्त्रशोथ आदि । वस्त्र, बर्तन, कलम, पेन्सिल, तौलिया, खिलौने उपकरण आदि ऐसी वस्तुएं है जिनमे सक्रमण को अवशोषित (Absorb) प्रतिधारण (Retain) व सक्रमण (Transmission) करने की क्षमता होती है । ऐसी वस्तुओ को फोमाइट्स (Fomites) कहते हैं ।

सवाहक सक्रमण

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले रोगो का सक्रमण निम्न प्रकार होता है ---

(क) सुग्राही व्यक्ति की श्लेष्मकला व त्वचा मे सवाहक द्वारा काटे जाने से विकारी तत्वो का प्रत्यक्ष अन्त क्षेपण (Inoculation) से रोग का उत्पन्न होना ।

(ख) खाद्य सामग्री व त्वचा आदि अन्य वस्तुओ पर सवाहक द्वारा विकारी तत्वो के सग्रह कर उन्हे दूषित करना जिनके सेवन से व्यक्ति मे सक्रामक रोग उत्पन्न होते है ।

सवाहक द्वारा रोग संक्रमण निम्न प्रकार से होता है

1 कीटो द्वारा अपनी टागो व शरीर की सहायता से रोग अभिकर्ता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर रोग का प्रसार करना । यह रोग है दस्त, पेचिश, मियादी ज्वर आदि ।

2 अभिकर्ता द्वारा सवाहक के शरीर मे प्रवेश कर गुणन विधि से अपनी वश वृद्धि करना, जैसे प्लेग जीवाणु चूहे के पीस्सु मे ।

3 परजीवी द्वारा सवाहक के शरीर मे अपना जीवन चक्र पूर्ण कर अपनी वृद्धि करना जैसे मलेरिया परजीवी मच्छर मे।

4 परजीवी अपना जीवन चक्र सवाहक के शरीर मे बिना वश वृद्धि के पूर्ण करता है जैसे मच्छर मे फाइलेरिया परजीवी।

परजीवी के इन प्रकार सवाहक के शरीर मे उत्पत्ति क्रम मे लगे समय को वाह्य जीवन चक्र काल कहते है।

सवाहक द्वारा रोग सचार मे निम्नलिखित बिन्दु सहायक होते है–

(क) सवाहक द्वारा परजीवी का चयन,

(ख) विकारी अभिकर्ता द्वारा सक्रमण करने की क्षमता।

(ग) सवाहक की जीवन दर

(घ) व्यक्ति के साथ सवाहक की समागम क्षमता एव

(ङ) मौसम

वायु सवाहित सक्रमण (Airborne Infection)

दूषित रज कण (धूल) व बिन्दुत्क्षेप (Droplet infection) द्वारा सचारित रोग इस वर्ग मे आते हैं।

दूषित रज कण से फैलने वाले रोग

जब कभी किसी रोग से सक्रमित व्यक्ति छीकता, खासता या थूकता है तो आर्द्रता के बडे कण फर्श पर पडी धूल मे मिल जाते हैं। इस धूल के सम्पर्क मे आए रूमाल, वस्त्र या अन्य वस्तु पर भी विकारी जीवाणु लग जाते हैं जिनको उपयोग मे लाने पर रोग जीवाणु सुग्राही व्यक्ति के श्वास तन्त्र मे प्रवेश कर रोग फैलाते हैं । इस प्रकार के रोग है –क्षय, फुफ्फुसीय रोग, वयू-ज्वर आदि।

बिन्दुत्क्षेप द्वारा

विविध प्रकार के विकारी जीवाणु गले, नासिका व मुख मे रहते है। खासते, छीकते, बात करते व भाषण आदि देते समय लार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म

कण वायु कणो के साथ मिलकर यह जीवाणु उत्क्षेप होकर रोग सचार करते हैं। इस प्रकार फलने वाले रोग है–फुफ्फुसीय क्षय रोग, वडी खासी, खसरा गलघोटू, इफ्लूएजा आदि। छीकते व खासते समय रुमाल, वस्त्र आदि पर आर्द्रता के सूक्ष्म बिन्दु जम जाते हैं तथा इनका पुन उपयोग करने से रोग जीवाणु सुग्राही व्यक्ति के शरीर मे श्वास तन्त्र के माध्यम से प्रवेश कर रोग फैलाते है।

वाहक सक्रमण

वाहक सचरण से होने वाले रोग के जीवाणु, दूध, पानी, खाद्य पदार्थ दूध से बने पदार्थो सीरम, प्लाज्मा आदि माध्यमो से स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर सक्रमण करते है। इनमे से पानी सक्रमण का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार स होने वाले रोगो में हैजा, मियादी ज्वर, वाल पक्षाघात, वायरल हिपेटाइटिस, कृमि रोग आदि प्रमुख है। रक्त के माध्यम से होने वाले रोग है मलेरिया, सिफिलस आदि। जीवाणु इन माध्यमो से स्वय की वश वृद्धि करते है या फिर निष्क्रिय रूप से सक्रमण फलाते है।

उपरोक्त माध्यमा से प्रसारित होने वाले रोगो मे यदि जीवाणुओ की सख्या अधिक होगी तो रोग प्रसार बहुत अधिक व गम्भीर होगा। प्रारम्भ मे रोगियो की सख्या सीमित रहती हैं अर्थात् केवल वही व्यक्ति सक्रमित होते हैं जिन्होने दूषित पानी, दूध, खाद्य पदार्थों आदि का उपयोग किया हो बाद मे यह रोग अन्य व्यक्तियो को भी प्रभावित करते हैं एव इससे रोग का प्रसार होता है।

अपरा (Placenta) के माध्यम से फैलने वाले रोग

कुछ रोग सक्रमित माता से अपरा के माध्यम से भ्रूण को हो जाते है तथा नवजात शिशु मे उस विशेष रोग के लक्षण दिखाई देते है जैसे उपदश खसरा, रुबेला आदि रोग।

सचारी रोगो पर नियन्त्रण

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि सचारी रोगो का प्रसार व सचार विकारी अभिकर्ता, परपोषी व पर्यावरण तत्त्वो की पारस्परिक क्रिया

पर निभर करता है। अत इन रोगो के नियन्त्रण के लिये किसी प्रकार इस पारस्परिक क्रिया को रोकना आवश्यक है। प्राय सचारी रोगो के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित उपाय काम मे लाए जाते है –

(क) सक्रमण के उद्गम स्रोतो का नियन्त्रण

यदि स क्रमण के उद्गम स्रोत स क्रमित व्यक्ति, स क्रमित रोगी या रोग वाहक व्यक्ति का पता शीघ्र लगा लिया जाए तो रोग को आसानी से तथा समय पर नियन्त्रित किया जा सकता है। यह निम्नलिखित बातो पर निर्भर करता है –

शीघ्र निदान (Early diagnosis)

रोगी का शीघ्र पता लगा कर शीघ्रातिशीघ्र रोग का निदान करना आवश्यक है अर्थात् रोग का कारण क्या है, स क्रमण कैसे हुआ, कहा से आया आदि। स क्रमण का उद्गम स्रोत क्या था, वहा से रोग प्रसार होने मे कितना समय लगा तथा अब कितने व्यक्ति प्रभावित है। यह सब पता लगाना आवश्यक है।

अधिसूचना (Notification)

स क्रमण रोग का पता लगते ही स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी को सूचित कर देना चाहिए। समय पर सूचना मिलने से स्वास्थ्य अधिकारी रोग नियत्रण उपाय एव रोगी का उपचार शीघ्र आरम्भ करवा सकते है, देरी से सूचना मिलने से रोग का प्रसार हो सकता है। तथा स्थिति गम्भीर रूप ले सकती है। इतना ही नही अधिसूचना से समुदाय मे रोगियो की सख्या तथा उस विशेष रोग के विषय मे पूरी जानकारी मिल जाती है। फलस्वरूप नियत्रण उपाय प्रभावी ढ ग से क्रियान्वित किये जा सकते हैं। अधिसूचना के आकडो से रोग का कारण, उसका प्रसार आदि विषयो पर कार्य किया जा सकता है।

वे बीमारिया जो जन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो उन सबकी अधिसूचना की जानी चाहिए। प्राय खसरा, हैजा, आन्त्रशोध, वाल,

पक्षाघात आदि रोगो के विषय मे अधिसूचना करनी चाहिए। वसे अधिसूचना वाले रोग अलग-अलग देश, राज्यो मे भिन्न होते हैं। सक्रामक रोग की सूचना चिकित्सक, क्षेत्रीय स्वास्थ्य निरीक्षक या कार्यकर्ता, ग्राम पचायत आदि के द्वारा की जाती है। तथा सूचना मे निम्न बिन्दुओ पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए– सक्रमण के प्रति, सक्रमण के उद्गम स्त्रोत व उसके प्रसार की स्थिति के प्रति एव सक्रमित क्षेत्र के प्रति।

पृथक्करण (Isolation)

सक्रामक रोग से पीडित व्यक्ति को एक अलग एकान्त स्थान पर या चिकित्सालयो मे रखा जाना चाहिए। पृथक्करण का मुख्य उद्देश्य किसी समुदाय विशेष मे रोग के प्रसार को सीमित करना है। कुछ रोगो मे इसका विशेष महत्व है अन्य मे कम। पृथक्करण का समय रोग की सक्रामकता पर निर्भर करता है। यदि किसी रोग की सक्रामक अवधि अधिक है तो रोगी को लम्बे समय तक पृथक रखा जाना चाहिए।

हैजा, गलघोटू, श्वास नली सम्बन्धी बीमारियो मे इसका महत्व अधिक है जबकि इन्फलुएन्जा, मलेरिया आदि मे कम। जिस बीमारी मे रोग लक्षण दिखाई देने से पूर्व रोगी कई दिनो तक सक्रामक बना रहे, ऐसी अवस्था मे भी पृथक्करण अधिक महत्त्व नही रखता जैसे गलसुए। तपेदिक व कुष्ठ रोग के रोगी को पृथक रखने की अपेक्षा उसे औषधि से उपचार करके निस्सक्रमित बना दिया जाए, अर्थात् ऐसे रोगियो का शारीरिक पृथक्करण की अपेक्षा रासायनिक पृथक्करण उनके घरो मे रखकर औषधियो से किया जाए। ऐसा करने से रोगी असक्रमित हो जाते है तथा घर के अन्य सदस्यो को सक्रमित नही कर सकते। वर्तमान मे रोग नियन्त्रण की पृथक्करण विधि को बहुत विवेक से उपयोग मे लाया जाता है। रोग नियन्त्रण एव महामारी विज्ञान तकनीकी मे विकास होने के कारण अधिकतर बीमारियो मे पृथक्करण विधि के स्थान पर रोग सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया जाने लगा है।

उपचार (Treatment)

रोग नियन्त्रण मे उपचार का बहुत अधिक महत्व है । निदान होते ही रोगी का उपचार शीघ्र आरम्भ किया जाना चाहिए जिससे रोग की सक्रामकता मे कमी लाई जा सकती है, रोग के प्रसार को रोका जा सकता है रोग का समय कम होता है, रोग को दूसरे व्यक्तियो तक फैलने से रोका जा सकता है ।

निरोधकाल (Quarantine)

रोग के अन्तर्विकास काल की अवधि तक निरोग व्यक्तियो का सक्रमित व्यक्तियो के सम्पर्क मे आने से रोकना जिससे स्वस्थ व्यक्तियो को सक्रमित होने से बचाया जा सके । इस प्रकार की सावधानी विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय यात्रा करने वाले यात्रियो मे ली जाती है जिससे विशेष प्रकार के सक्रामक रोगो को एक देश से दूसरे देश मे जाने से रोका जा सके ।

सर्वेक्षण (Surveillance)

यह एक प्रकार की ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सन्देहात्मक व रोग ग्रसित व्यक्तियो का तत्काल सर्वेक्षण किया जाकर निदान के लिए प्रयोगशाला मे तत्काल परीक्षण किया जाता है । इसके अतिरिक्त सक्रमण के उद्गम स्त्रोत व सक्रमण के माध्यम का पता लगाना, अन्य व्यक्ति जो सक्रमित हो चुके हैं उनका पता लगाना आदि प्रक्रिया भी इसी में सम्मिलित हैं ।

रोगियो की सख्या व मृत्यु सख्या का पता लगाना, उपरोक्त सभी आकडो को क्रमवार एकत्र कर रोग नियन्त्रण अधिकारियो को उचित समय पर भेजना भी इसी प्रक्रिया के महत्वपूण अग हैं । सर्वेक्षण से न केवल उपरोक्त आकडे ही एकत्र करने मे सहायता मिलती है बल्कि रोग के प्रभावी नियन्त्रण, रोग प्रसार के विषय मे पूर्व सूचना देने आदि मे सहायता मिल सकती है ।

निस्सक्रमण (Disinfection)

रोगी के रोगकाल में मल, मूत्र, थूक आदि संक्रामक पदार्थों को तत्काल नष्ट कर देना चाहिए। साथ ही रोगी के द्वारा उपयोग में लिए गये या उसके सम्पर्क में आये बर्तन, वस्त्र, कमरा, उपकरण आदि निस्संक्रमित किये जाने चाहिए। संक्रामक रोग नियन्त्रण उपायों का यह बहुत ही उपयोगी व महत्वपूर्ण अंग है। प्रथम को रोगकालीन संक्रामक निस्संक्रमण व द्वितीय को अन्तिम संक्रामक निस्सक्रमण विधि कहते हैं।

वे पदार्थ जो रोग फैलाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं, निस्सक्रमण (Disinfection) पदार्थ कहलाते हैं, तथा इस क्रिया को निस्संक्रमण कहते है। यह आवश्यक नहीं कि इस विधि से जीवाणु बीज (bacterial Spores) भी नष्ट हो जाए। परन्तु इसके द्वारा जीवाणु इस सीमा तक कम हो जाते है, जिससे कि वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं हो सकते।

एंटीसेप्टिक– वे पदार्थ है जो सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं। यदि निस्सक्रमण पदार्थों को अधिक जल मिश्रित (diluted) अवस्था में उपयोग में लाए तो वह एंटीसेप्टिक का ही काम करते है।

निर्गंध करने वाले पदार्थ (Deodorant)– वे पदार्थ हैं जो गंध को मिटाने का कार्य करते है, ऐसे पदार्थ निर्गन्ध करने वाले पदार्थ कहलाते हैं जैसे चूना, ब्लीचिंग पाउडर।

निर्जीवन (Sterlization)– इस विधि द्वारा सूक्ष्म जीवाणुओं को सम्पूर्ण नष्ट कर दिया जाता है।

निस्सक्रमण की विधियां

(1) सवर्तित/एकीभूत निस्सक्रमण (Concurrent Disinfection) – यह विधि रोगी अवस्था के पूरे समय में संक्रमित पदार्थों में विद्यमान सभी जीवाणुओं को तुरंत नष्ट करने के काम आती है। जैसे ही जीवाणु रोगी के शरीर से बाहर निकलकर मल-मूत्र, संक्रमित वस्त्र, चद्दर, पट्टी, कै, दस्ताने

आदि के माध्यम से दूसरो तक सक्रमण प्रसार करें उससे पूर्व ही उसे नष्ट कर देना चाहिए।

(2) प्रोफाइलेक्टिक निस्सक्रमण (Prophylactic Disinfection)– इस विधि के अन्तर्गत पानी का रासायनिक क्रिया द्वारा या उबाल कर निस्सक्रमण करना आदि आते हैं।

(3) अन्तिम निस्सक्रमण (Terminal Disinfection) – इस विधि के अन्तर्गत रोगी के पूर्ण स्वस्थ होने पर या मृत्यु पश्चात उन सभी वस्तुओ का, कमरे तथा आस-पास के स्थान का निस्सक्रमण करना आदि आते हैं।

इन सब उपायो की क्रियान्विति के लिए विभिन्न पदार्थ, तत्त्व व रसायन उपयोग मे लाए जाते हैं जो निम्न प्रकार हैं –

प्राकृतिक तत्त्व – इसके अन्तर्गत सूर्य तथा वायु आते है। सूर्य के प्रकाश व किरणो के सीधे व निरन्तर सम्पर्क मे आने से कई बीमारियो के जीवाणु स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। लेकिन इन दोनो उपायो पर सक्रमित वस्तुओ के निस्सक्रमण के लिए निर्भर नही रह सकते।

भौतिक तत्त्व – इन तत्त्वो के अन्तर्गत उबालने की विधि, गर्म हवा से जलाने की विधि, वाष्प व विकीरण द्वारा निस्सक्रमण करना आदि आते है। सक्रमित वस्त्र, चद्दर, बर्तन, औजार, कांच के बर्तन आदि को पानी मे उबाल कर निस्सक्रमित किये जा सकते हैं। प्राय 5–10 मिनट तक उबालने से लगभग सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। लेकिन वस्त्र, चद्दर आदि के लगभग 2 घटे तक 100° से ताप पर पानी मे उबालना चाहिए तथा साथ मे साबुन या कपड धोने का सोडा डाल देना चाहिए। उबालने की विधि से दरी, गद्दे, गर्म कपडे आदि को निस्सक्रमण करना कठिन है।

गर्म हवा से निस्सक्रमण – वेसलीन, तेल, पाउडर, पट्टिए, सीरीज आदि को ओवन मे 160° से 60 मिनट तक गर्म हवा के नीचे से निकाल कर निस्सक्रमित किए जा सकते हैं।

जला कर निस्सक्रमण – निस्सक्रमण का यह बहुत ही उत्तम उपाय है।

पट्टी, रुई, स्वाब (Swabs), कागज आदि सक्रमित सस्ती वस्तुएँ जला कर नष्ट की जा सकती है ।

वाष्पीकरण – वाष्प द्वारा अनेक वस्तुएँ निस्सक्रमित की जा सकती हैं। पानी को 121° से पर उबाल कर 15 पाउन्ड प्रति वर्ग इंच दबाव पर वाष्प तैयार की जा सकती है । इस गर्म वाष्प को सक्रमित वस्तुओं के ऊपर से निकालने पर वस्तुओं को 15 मिनट मे निस्सक्रमित किया जा सकता है यह एक उत्तम व उपयुक्त उपाय है ।

रासायनिक तत्त्व – ब्लीचिंग पाउडर, चूना, पोटेशियम, परमेगनेट, फिनोल, किनोल, फोमलिन, डिटोल, आदि इस समूह मे आते हैं जो अच्छे निस्सक्रमण तत्त्व है ।

ब्लीचिंग पाउडर – इसके द्वारा पानी, मल, मूत्र, कमरे, थूक, पस आदि निस्सक्रमित किए जा सकते है । पानी निस्सक्रमण करने के लिए ब्लीचिंग पाउडर की मात्रा तथा विधि का वर्णन किया जा रहा है ।

पानी को निस्सक्रमण करने के लिए 2 5 ग्राम ब्लीचिंग पाउडर प्रति 1000 लीटर पानी को 60 मिनट मे निम्सक्रमित कर सकता है। कुएँ के पानी को निस्सक्रमित करने की विधि निम्न प्रकार है–

पानी की मात्रा निकालना –

$$\text{पानी का आयतन} = \frac{3\ 14 \times d^2 \times h}{4} \times 1000 \text{ घ मी}$$

d– कुए का व्यास जो विभिन्न मापो का औसत हे ।

h– कुए मे पानी की गहराई ।

एक घन मीटर = 1000 लीटर पानी की मात्रा ।

घोल बनाने की विधि – उपर्युक्त क्रिया के पश्चात् ब्लीचिंग पाउडर की आवश्यक मात्रा निकाल लें । अब ब्लीचिंग पाउडर को एक बाल्टी मे लें, लेकिन इसकी मात्रा एक बाल्टी के लिए 100 ग्राम से अधिक नही होनी चाहिए ।

थोडा सा पानी डालकर पहले पेस्ट बना लें फिर बाल्टी मे पानी डालें। पानी डालते समय पेस्ट को हिलाते रहें। पानी से बाल्टी को तीन चौथाई भर लें, इसके बाद मे 5–10 मिनट तक घोल को स्थिर रहने दें। चूना नीचे बैठ जाएगा, तथा क्लोरीन का घोल तैयार हो जायेगा। क्लोरीन के घोल को दूसरी बाल्टी मे डाल लें तथा नीचे बचे चूने को फेंक दें। कुए के पानी को क्लोरीन के घोल से निस्सक्रमण करना – रस्सी की सहायता मे बाल्टी को मय घोल के कुए के पानी में सीधी उतारें। पानी में बाल्टी को जोर से हिलाए जिससे क्लोरीन का सारा घोल कुए के पानी मे घुल जाए। कुए के पानी का उपयोग कम से कम एक घण्टे बाद करें।

चूना – यह एक सस्ता निस्सक्रमक तत्त्व है तथा मल व कमरे की दीवारों को निस्सक्रमित करने के काम मे आता है। दो भाग चूने का दूध (Milk of lime) तथा एक भाग मल को चार घन्टे तक मिला कर पटक दें तो वह निस्सक्रमित हो जाएगा।

(ख) सक्रमण प्रसार के मार्गों को अवरुद्ध करना

यह पूर्व मे ही बताया जा चुका है कि सक्रामक रोग अनेक माध्यमों–सम्पर्क, सवाहक, वाहक व वायुजनित आदि माध्यमों से अपना प्रसार करते हैं। यदि किसी रोग विशेष का माध्यम विदित हो तो उसका परीक्षण कर नियन्त्रण के उपाय किए जा सकते हैं।

सवाहक द्वारा सचारण – मच्छर, मक्खी, पिस्सू आदि मुख्य जीवाणु सवाहक हैं जो रोग सचार व प्रसार मे सहायक होते हैं। इनकी उत्पत्ति, वृद्धि एव विकास को रोकना आवश्यक है जिससे रोग प्रसार को नियन्त्रित किया जा सके। पर्यावरण स्वच्छता, कीट नाशक औषधियो का उपयोग, लार्वा नियत्रण आदि अनेक उपाय हैं जिनसे रोग सचार माध्यमो पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

वाहक द्वारा सचारण सक्रमित पानी, दूध, खाद्य पदार्थ एव रोगी

के मल-मूत्र, थूक आदि माध्यम रोग संचार मे सहायक होते हैं। पानी का निस्सक्रमण, व्यक्तिगत स्वास्थ्य का ध्यान देना, दूध को उबालकर उसे निस्कीटित करना, रोगी के मल-मूत्र, थूक आदि को तत्काल नष्ट करना आदि उपाय वाहक माध्यम से सचारित होने वाले रोगो को नियत्रण कर सकते है। खाद्य पदार्थों को ढक कर रखना तथा मक्खी, कीट आदि से बचाना, खाने से पूर्व हाथ स्वच्छ पानी से धोना आदि उपाय रोग सचार नियत्रण मे सहायक होते है।

वायु माध्यम द्वारा सचारण – वायु माध्यम से रोग सचार निम्न प्रकार होता है– बिन्दुत्क्षेप द्वारा, सक्रमित धूलकण द्वारा। वायु माध्यम से सचारित रोगो को नियत्रण करने के लिए निम्न उपाय सहायक हो सकते है– कमरे मे उपयुक्त वायु व प्रकाश का प्रबन्ध जिससे स्वच्छ व ताजा हवा मिल सके। सूर्य के प्रकाश व उसकी गर्मी से कुछ प्रकार के रोग जीवाणु स्वत ही नष्ट हो जाते हैं अत घरो मे सूर्य प्रकाश की सुविधा होनी चाहिए। रोगी को स्थान-स्थान पर थूकने से रोका जाए।

खासने व छीकते समय मुख व नासिका (नाक) पर रुमाल का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे कि आर्द्रता कण वायु तथा धूल कण मे न मिले तथा वायु एव धूल सक्रमित न हो। धूल नियत्रण, वायु शुद्धि करण, भीड भाड वाले इलाको मे कमी लाना अनेक ऐसे उपाय है जिनकी सहायता से वायु माध्यम से सचारित रोगो पर नियत्रण पाया जा सकता है।

सम्पर्क द्वारा रोग सचारण– सक्रमित व्यक्तियो के सम्पर्क मे स्वस्थ व्यक्तियों को आने से रोका जाए। सुजाक, उपदश, त्वचा रोग आदि ऐसे रोग है जिनमे यदि सक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क मे स्वस्थ व्यक्ति आ जाए तो वह भी सक्रमित हो जाता है। अत ऐसे रोगो के नियत्रण के लिए सामाजिक जागरूकता आवश्यक है।

(ग) रोग प्रतिरक्षक उपाय

सचारी रोग जैसे चेचक, क्षय, बाल पक्षाघात, गलघोटू, बड़ी खासी

धनुपवाय, खसरा आदि की रोकथाम रोग प्रतिरक्षण टीके लगाकर की जा सकती है । रोग प्रतिकारिता दो प्रकार की होती है, प्राकृतिक व कृत्रिम । कृत्रिम प्रतिकारिता दो भागो मे विभक्त की जा सकती है – सक्रिय व निष्क्रीय । रोग प्रतिरक्षण, रोग होने से पूर्व विशेष औषधियो के दिये जाने से किया जा सकता है जैसे मलेरिया निरोधक औषधियों के देने से, कुष्ठ रोग मे डेप्सोन या डी० डी० एस० आदि देने से ।

(घ) स्वास्थ्य शिक्षा

यह सचारी रोग नियन्त्रण उपायो का बहुत ही महत्वपूर्ण अग है। समुदाय शिक्षा के माध्यम से जन जागृति उत्पन्न कर जन-समुदाय के सहयोग से यह काय सफलता पूर्वक किया जा सकता है। जनता को स्वास्थ्य शिक्षा सही व उचित समय पर दी जानी चाहिए ।

स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तर्गत रोग के प्रसार मे क्या चीजें सहायक हो सकती है उस पर प्रतिरोध कैसे लगाया जा सकता है, किन चीजा मे सावधानी बरतनी चाहिए। यह सब स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रो के अन्तर्गत बहु-उद्देशीय कार्यकर्ताओ द्वारा फिल्म, कैम्प व प्रचार के माध्यम से स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे समय-समय पर जानकारी दी जानी चाहिए । जिससे ग्रामीण लोगो को रोगो के सम्बन्ध मे जानकारी मिलती रहे, इस माध्यम द्वारा भी रोगो के प्रसार पर अकुश लगाया जा सकता है ।

ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव मे लाखो बच्चो की मृत्यु प्रतिवर्ष होती है, अगर इन बच्चो को समय पर प्रतिरोधक टीके लगाये जाते है तो निश्चय ही इन बच्चो को काल का ग्रास बनने से बचाया जा सकता है ।

सचारी रोगो का वर्गीकरण

(क) उनके कारक तत्वो के आधार पर –

विषाणु जन्य रोग	चेचक, छोटी माता, खसरा, जर्मन मीजल्स, (रूबेला) गलफड़े, बड़ी खांसी, इन्फ्ल्यूएन्जा, स्कार्लेट ज्वर पोलियो, हिपेटाइटिस, एड्स–ज्वर
जीवाणु जन्य रोग	गलघोटू, हैजा, मियादी ज्वर, पेचिस, क्षय, कुष्ठ रोग ।
कृमि जन्य रोग	एस्केरियासिस, एन्ट्रोबायसिस, हुकवाम, स्ट्रॉग्यूलायडोसिस ।
संवाहक जन्य रोग	मलेरिया, फाइलेरिया, डेंग्यू, टाईफस ज्वर, पीत ज्वर, प्लेग ।
सम्पर्क संक्रमित रोग	सुजाक, उपदंश ट्रेकोमा, स्केबीज, रेबीज, टिटनस आदि ।

(ख) व्यक्ति के प्रभावित शारीरिक संस्थानों के अनुसार –

श्वास संस्थान संक्रमण सम्बन्धी रोग	चेचक, छोटी माता, खसरा, गलफड़े, गलघोटू बड़ी खांसी, इन्फ्ल्यूएन्जा, सकार्लेट ज्वर, ह्वेल मस्तिष्क सुष्मना, ज्वर ।
आंत संक्रमण सम्बन्धी रोग	हैजा, मियादी ज्वर, पैराटाइफायड ज्वर, पोलियो माइलाईटिस, इन्फेक्शियस, हिपेटाइटिस, फूड पायजनिंग, एस्केरिएसिस एन्ट्रो बायसिस, हुकवाम आदि ।
रक्त संक्रमण सम्बन्धी रोग	मलेरिया, फाईलेरिया, डेंग्यू, टाईफस ज्वर, रिलेप्सिंग ज्वर, पीत ज्वर, प्लेग आदि ।
सम्पर्क संक्रमण सम्बन्धी रोग	सुजाक, उपदंश आदि तागिक रोग, ट्रेकोमा, स्केबीज, एरीसिपेलास, टिटनेस, रेबीज आदि ।

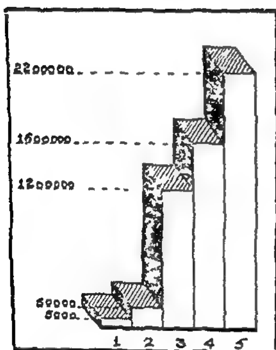
क्र० स०	रोग का नाम	अन्तर्विकास काल	निरोध काल	पृथक्करणकाल/सक्रमणता काल
1	चेचक	7 से 14 दिन	14 दिन तक सफलता पूर्वक टीका लग जाने की अवधि तक	दाने निकलने के प्रथम 6 दिन वाद तक जब तक ।
2	हैजा	1 से 5 दिवस	8 दिवस	प्राय 7–14 दिवस जब तक मल जीवाणु मुक्त नही हो जाय।
3	गलघोटू	2 से 5 "	10 "	रोग के आरम्भ होने के 14-24 दिवस वाद तक।
4	पेचिस	1 से 7 "	—	मल जीवाणु मुक्त होने तक ।
5	खसरा	7 से 14 "	7 से 21 दिवस	दाने निकलने के 4 दिन पूर्व से (लगभग 9 दिवस।)
6	गलफड़े	14 से 21 "	7 से 28 दिवस	जब तक सूजन समाप्त नही हो जाती ।
7	छोटी माता	14 से 21 "	24 दिवस	दाने निकलने के प्रथम दिवस 6 दिवस बाद तक।
8	पोलियो	7 से 14 "	—	अन्तर्विकास काल के अन्तिम समय से रोग के 1 या 2 सप्ताह तक।

क्र० सं०	रोग का नाम	अंतर्विकास काल	निरोध काल	पृथक्करणकाल/संक्रमणता काल
9	मियादी ज्वर	5 से 21 दिन	21 दिवस	मल व मूत्र के जीवाणु मुक्त होने तक।
10	डेंग्यू ज्वर	3 से 15 "	—	रोग के आरम्भ होने के 1 दिवस पूर्व से 5 दिवस तक
11	प्लेग	2 से 6 "	कृमिनाशक क्रिया हो जाने के 8 दिन बाद	ब्यूबोनिक प्लेग संक्रमित नहीं होता।
12	बड़ी खासी	14 से 21 "	21 दिवस	रोग लक्षण के प्रथम दिवस से 21 दिवस तक।
13	पीत ज्वर	3 से 10 '	6 दिवस	रोगी का रक्त रोगकाल के प्रथम 3-4 दिन तक संक्रमित रहता है।
14	रूबेला	14 स 21 '	—	लक्षण दिखाई देन स कम स कम 5 दिन बाद तक।
15	हिपेटाईटिस ए	15 से 50	—	— —
16	इन्फ्लूएन्जा	1 से 3 "	—	रोग आरम्भ होने से 7 दिवस बाद तक।

श्वास तंत्र संक्रमण सम्बन्धी रोग

(Respiratory Tract Infection)

विश्व मे 5 वर्ष से कम आयु के बच्चो मे प्रमुख सक्रामक बीमारियो से मृत्यु सम्बन्धी आकडे



- चेचक
- छोटी माता
- खसरा
- जर्मन मिजल्स (रूबेला)
- गलफडे
- गलघोटू
- बडी खासी
- मेनिंगोकोकल मेनिन्जाइटिस
- तपेदिक

1 गलघोटू, 2 बाल पक्षाघात, 3 धनुषवाय, 4 बडी खासी एव 5 खसरे रोग से मरने वाले बच्चो की सख्या ।

विश्व मे सन् 1980 मे 50,55,000 छोटे बच्चे विभिन्न सक्रामक रोगो के काल के ग्रास बने जिन्हे रोग प्रतिरक्षण टीके लगाए जाकर बचाया जा सकता था । इस सख्या मे क्षय रोग से ग्रस्त बच्चो की सख्या सम्मिलित नही है ।

रोग को संक्रमण प्रसार से बचाइए

- संचारी रोगो की रोकथाम के लिये रोग-प्रतिरक्षण टीके लगवाए ।
- हर बार भोजन करने से पहले हाथ तथा अगुलियो के नाखूनो को साबुन से अच्छी तरह साफ करने की आदत डालें ।
- फल या कच्ची सब्जी अच्छी तरह साफ धोकर उपयोग मे लाए ।
- दूध को अच्छी तरह उबाल कर उपयोग मे लाए ।
- स्वच्छ पानी का उपयोग करें । यदि पानी की स्वच्छता मे सन्देह हो तो उसे उबालकर प्रयोग मे लाए ।
- शिशु को नगे पाव न घूमने दे, मिट्टी मे न खेलने दें ।
- बालक का नियमित शारीरिक परीक्षण करवाए ।
- बालक को पौष्टिक एव सन्तुलित भोजन समयानुसार निश्चित कार्यक्रम के अनुसार दे ।

श्वास तन्त्र सक्रमण सम्बन्धी रोग

(Respiratery Tract Infection)

चेचक एव छोटी माता

(Small pox & Chicken pox)

क्र स.	चेचक	छोटी माता
1	कारक तत्त्व-वोरियला वाईरस द्वारा होती है तथा 5 वप से कम आयु के बच्चे प्रभावित होते है। एक बार रोग होने के बाद दीर्घकालीन प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है लेकिन कभी-कभी 1000 मे से एक को दुबारा भी हो सकती है।	हरपीज (Herpes) वाइरस वेरीसेला जोस्टर द्वारा फैलनी है तथा 10 वर्ष नक की आयु के बच्चे प्रभावित होते हैं। एक बार रोग होने पर बच्चो मे दीर्घकालीन प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है। रोग का दुबारा होना नगण्य है।
2	रोग प्रसार-वायु व दूपित पदार्थो के माध्यम द्वारा रोग फैलता है।	वायु व दूपित पदार्थो के माध्यम से रोग फैलता है।
3	अन्तर्विकास काल--7-27 दिवस औसतन 12 दिवस।	12-21 दिनस औसतन 17 दिवस।
4	निरोधकाल-14 दिवस।	24 दिवस।

5	रोग के लक्षण–दाने निकलने से पूर्व 2-4 दिन ज्वर रहता है। दाने निकलने पर ज्वर उतर जाता है लेकिन ज्वर फिर भी हो जाता है।	हल्का ज्वर तथा ज्वर के साथ ही दानों का निकलना। प्रत्येक दानों के उभरने के साथ-साथ ज्वर होना है।
6	दानों का क्रम–दानों का क्रमिक विकास धीमी गति से सुव्यवस्थित तथा निश्चित क्रम से होता है जैसे मेक्यूल, पेप्यूल, छाले (Vescicle) व पस्च्यूल। दाने निकलने के 10-14 दिवस बाद खुरंड (Scab) बनने प्रारम्भ हो जाते हैं।	दानों का क्रमिक विकास तीव्र होता है। दाने निकलने के 4-7 दिवस बाद खुरंड बनने प्रारम्भ हो जाते हैं।
7	दानों की विशेषताएं–दाने गहरे, गोलाकार, स्पर्श करने पर तने हुए अनुभव होते हैं। आकार में बड़े होते हैं व दबाव डालने पर फट जाते हैं।	दाने छिछले, अण्डाकार होते हैं। तनावपूर्ण नहीं होते दबाव डालने पर प्राय नहीं फटते।
	–शरीर के एक क्षेत्र में दानों की एक प्रकार की अवस्था दिखाई देती है अर्थात् खुरंड व छाले एक साथ एक क्षेत्र में नहीं होते।	–एक समय में एक क्षेत्र में दानों की भिन्न भिन्न अवस्था दिखाई देती है।
	–छाले बहुलोब्यूलर व नाभीवतगहर (Umbilicated) होते हैं।	–छाले मनोलोक्यूलर होते हैं तथा नाभीवतगहर नहीं होते।
	–छाले के चारों ओर शोथ का क्षेत्र दिखाई नहीं देता।	–छालों के चारों ओर व्रण शोथ का क्षेत्र दिखाई देता है।

8 दानो का शरीर पर वितरण–	
–चेहरे व हाथ, पैरो पर घने होते हैं।	–धड व सीने पर घने होते है।
–हथेली व तलवो पर प्राय दाने दिखाई देते है।	–हथेली व तलवो पर दाने नही होते।
–बगल मे प्राय दाने नही होते।	–बगल में दाने होते हैं।
–दाने प्राय शरीर के एक्सटेन्सर भाग पर होते हैं।	–दाने प्राय शरीर के फ्लेक्सर भाग पर होते है।
9 शारीरिक विकृति व व्याधिया	–बहुत ही साधारण सक्रामक रोग है, मृत्यु दर भी नगण्य है तथा फुफ्फुसीय रोग जसे न्यूमोनिया एव मास्तिष्कीय रोग जैसे एन्केफेलाइटिस हो जाते है।
–फोडे, विद्रधि आदि त्वचा शोथ हो जाते है।	
–फुफ्फुसीय रोग ब्रोन्काइटिस ब्रोकोन्यूमोनिया आदि हो जाते है।	
–मस्तिष्किय-एनकेफेलाइटिस।	
–मृत्यु दर उच्च है।	

खसरा (Measles)

यह एक विशिष्ट सक्रामक विषाणु जन्य रोग है जो छोटी आयु के बच्चो मे होता है। रोग की प्रथम अवस्था मे तीव्र ज्वर, खासी, जुकाम आदि होते है तत्पश्चात् शरीर दर दाने निकल आते है।

इसके द्वारा बच्चो की मृत्यु बहुत कम होती है लेकिन इसके साथ कुपोषण की स्थिति व अन्य व्याधिया एव जटिलताए ब्रोकाइटिस, ब्रोको-न्यूमोनिया आदि बच्चो की मृत्यु के कारण बनते हैं।

रोग का प्रसार – वायु माध्यम व दूषित पदार्थो द्वारा फैलता है तथा 3 से 5 वर्ष तक की आयु के बच्चे अधिक प्रभावित होते है। एक बार

रोग होने पर दीर्घकालीन प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है। कुपोषित बच्चों में यह रोग गंभीर रूप ले लेता है। तथा मृत्यु दर भी बहुत अधिक होती है।

अन्तर्विकास काल – प्राय 10 दिवस
निरोध काल – 7-21 दिवस

रोग लक्षण

दाने निकलने से पूर्व – इस अवस्था मे बच्चे को तीव्र ज्वर, जुकाम, खासी, लाल नेत्र आदि लक्षण दिखाई देते हैं। 1–2 दिवस बाद मुख कपोलिए श्लेष्मकला (Buccal mucosa) पर काप्लिक स्पोट दिखाई देने लगते है। यह अवस्था 3–4 दिवस तक रहती है।

दाने निकलने की अवस्था – चौथे दिन शरीर पर दाने निकल आते हैं जो गहरे लाल रंग के मेक्यूलो-पेप्यूलर कहलाते है। पहले चेहरे पर तत्पश्चात् पूर्ण शरीर पर यह दाने निकल आते है तथा छाते की तरह फैलाव ले लेते है।

पाचवे-छठे दिन छाले हल्के पडने लगते है तथा त्वचा हल्के भूरे रंग की हो जाती है एव लम्बे समय तक यही रंग रहता है।

चेचक, छोटी माता व खसरा मे सामान्य परिचर्या, स्वच्छता आदि का ध्यान रखना चाहिए। द्वितीयक सक्रमण (Secondry infection) को रोकने के लिये जीवाणुद्वेषी औषधिया दी जानी चाहिये जैसे पेन्सिलीन टेट्रासाइक्लिन आदि। तेज ज्वर के लिए पेरासिटामोल दी जा सकती है। "बी" काम्पलेक्स, विटामिन सी दिए जाने चाहिए। नेत्रो व मुख की सफाई की जानी चाहिए तथा नेत्रो मे आइड्राप्स डालनी चाहिए।

बडी खासी (Whooping Cough)

श्वास नलिका का यह एक बहुत ही तीव्र सक्रामक रोग है जो ब्रूमेला पर्ट्यूसिस जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग मे शिशु मृत्यु दर 4-15 प्रतिशत

होती है । यह रोग प्राय शैशवकाल व शिशुओ मे होता है । 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चो मे इस रोग की दर उच्चतम होती है । एक वर्ष से कम आयु के शिशुओ मे मृत्यु – दर अधिक है विशेषतौर से कुपोषित शिशुओ मे । रोगी के स्वस्थ होने पर या रोग प्रतिरक्षण टीके लगाने पर प्रतिकारिता उत्पन्न होती है ।

रोग प्रसार – वायु माध्यम व दूषित पदार्थों के माध्यम से यह रोग फैलता है ।

अन्तर्विकास काल – 7-14 दिवस व 21 दिवस से अधिक नही ।

रोग लक्षण – श्लेष्मिक अवस्था (Catarrhal stage)

प्रावेगिक अवस्था – (Paroxysmal stage)

श्लेष्मिक अवस्था – ऊपरी श्वासनलो की यह बहुत ही सक्रमित अवस्था है जिसमे खासी व नासिकाशोथ (जुकाम आदि) हो जाते हैं तथा नेत्र व श्लेष्मकला लाल दिखाई देती है । यह अवस्था लगभग 10 दिवस के बाद प्रवेग जन्य अवस्था की ओर अग्रसर हो जाती है ।

प्रवेग–जन्य (प्रावेगिक) अवस्था–– इस अवस्था का मुख्य लक्षण है बार बार तेज खासी के प्रवेगो (Whoop) का आना । प्रवेगकाल मे बच्चे को तेज खासी आती है, खासते–खासते बेदम हो जाता है, नेत्र व चेहरा लाल हो जाते हैं, जीभ बाहर आ जाती है, खासी के साथ उल्टी आती है तथा अन्त मे बच्चा एक गहरा अन्त श्वास (Deep inspiration) लेता है । इस समय हुफनी (प्रवेग) की आवाज सुनाई देती है । इस प्रकार के प्रवेग 24 घन्टो मे लगभग 40–50 बार आते हैं तथा रात्रि के समय अधिक आते है । यह अवस्था 2 से 4 सप्ताह या इससे भी अधिक समय तक रहती है ।

रोगी के स्वस्थ होने पर उसमे प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है ।

उपचार – जीवाणुद्वेषी (Antibiotic) औषधियो का सेवन कराया जाना चाहिए जैसे एरिथ्रोमाइसिन, 30–40 मि ग्रा प्रति कि० ग्राम शारीरिक वजन की मात्रा मे प्रतिदिन चार बार 14 दिवस तक या टेट्रासाइक्लिन 100 मि० ग्राम दिन मे 2–3 बार दी जा सकती है ।

इसके अतिरिक्त एम्पीसिलिन, एमोक्सिलिन, मेप्ट्रान आदि भी दी जा सकती है साथ मे एस्प्रिन/पेरासिटामोल एव कफलिन्क्टस, बी-काम्पलेक्स आदि भी दी जानी चाहिए।

गलसुए (Mumps)

यह एक वाइरस जन्य तीव्र सक्रामक रोग है जो विशेष रूप से ग्रन्थियो को प्रभावित करता है इस रोग मे प्राय एक या दोनो पेरोटिड ग्रन्थिया प्रभावित होती है जो विना पके आकार मे बडी हो जाती है एव उन्हे स्पर्श करने पर पीडा अनुभव होती है। इसके अतिरिक्त प्रभावित होने वाली ग्रन्थिया व सस्थान है, प्रोस्टेड, डिम्ब ग्रन्थि, स्तन, सन्धिया, कान आदि।

रोगोत्पादक कारक तत्त्व – विशेप प्रकार के पेरामिक्सोवाइरस समूह के विषाणु से यह रोग उत्पन्न होता है जो रोग वायु व दूषित पदार्थो के सम्पर्क मे आने से फलता है। 5–15 वर्ष तक के बच्चे प्रभावित होते है।

अन्तर्विकासकाल – 14–21 दिवस, प्राय 18 दिवस।

रोग के लक्षण – पेरोटिड ग्रन्थियो आकार वढ जाता है उस क्षेत्र मे सूजन आ जाती है। मुख खोलते समय रोगी पीडा अनुभव करता है, पूरा मुख खोलने मे कठिनाई होती है। तीव्र रूप मे प्रभावित रोगियो मे ज्वर, सिर का दर्द एव अन्य शारीरिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी सब-मेण्डीवुलर व सव-मेक्जीलरी ग्रन्थियाँ भी प्रभावित हो जाती हैं। लडकियो के पेडू मे दर्द व लडको के अण्डकोप मे दद हो सकता है।

उपचार – मुख की स्वच्छता अति आवश्यक है। कीटाणुनाशक दवा मिले पानी से मुँह की सफाई की जानी चाहिए। वैलेडोना प्लास्टर का उपयोग स्थानीय रूप मे करें। लक्षण के अनुसार एस्प्रिन, पेरासिटामोल आदि दी जा सकती है। प्राय बिना किसी उपचार के रोगी ठीक हो जाता है।

गलघोटू (Diptheria)

यह एक तीव्र सक्रामक रोग है जो कोर्नीबेक्टिरियम/डिप्थीरी नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है । इससे नाक, गला, टोन्सिल्स प्रभावित होते हैं। यह रोग मुख्य रूप से कठ क्षेत्र की श्लेष्मिक झिल्ली मे विशेष प्रकार की सूजन उत्पन्न करता है । श्वास नली पर सफेद व मैले वर्ण की झिल्ली बन जाने से निगलने मे एव श्वास लेने मे कठिनाई होती है, रोगी बोल नही पाता । अन्तत मृत्यु भी सम्भव है ।

रोगोत्पादक तत्त्व – कोर्नीबेक्टिरियम डिप्थीरी नामक जीवाणु से रोग उत्पन्न होता है । तीन प्रकार के जीवाणु होते है–ग्रेविस, माइटिस एव मध्यम श्रेणी के । ग्रेविस बहुत ही गम्भीर व तीव्र अवस्था उत्पन्न करता है । प्राय 6–15 वर्ष के शिशु अधिक प्रभावित होते है, वैसे यह रोग किसी भी अवस्था मे हो सकता है।



माईटिस मे मन्द गति का सक्रमण होता है । यह रोग विद्यालय पूर्व की आयु वर्ग के शिशुओ मे विशेष रूप से होता है एव 6 माह से कम आयु वर्ग के शिशुओ मे बहुत कम होता है । शैशवकाल मे माता के दूध मे प्रतिरक्षण पदार्थो की उपलब्धि रोग की दर को कम करती है ।

जीवाणु का आधार मुदगर की तरह होता है जिसका एक सिरा मोटा तथा दूसरा अण्डाकार होता है । यह अम्लसह नही होते । इनकी

लम्बाई लगभग 3-5 माइक्रोन होती है। यह समूह मे अग्रेजो के L या U अक्षरो के आकृति मे अनुक्रमित होते है। परीक्षण के समय स्लाइड को ग्राम स्टेन से रजित किया जाता है। इनमे गति, तन्तुपिच्छ (Flagellets) व बीजाणु (Spores) नही होते।

रोग प्रसार रोग वायु माध्यम व दूषित पदार्थों के माध्यम से फैलता है। रोग वाहक व्यक्ति इसके प्रसार मे विशेष भूमिका निभाते हैं। इसके जीवाणु रोगियो या रोग वाहक के शरीर, मुख व नाक या थूक के माध्यम से बाहर आते हैं तथा स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे मुख व नासिका मे प्रवेश करते हैं। ये नासिका, कण्ठ, श्वासनली की श्लेष्मिक झिल्ली मे एकत्र हो जाते हैं, दूषित दूध भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

अन्तर्विकास काल 1-7 दिवस।

शयनिक लक्षण – इस रोग में तालुमूल ग्रन्थि (Tonsils) सक्रमित है, जिसके चारो ओर झिल्ली बन जाती है। नासिका भी काफी प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त ग्रसनिका (फॅरिक्स), स्वरयन्त्र (लेरिंग्स) व श्वासनली भी प्रभावित होती है, इन सबके प्रभावित होने से बोलने मे, श्वास लेने मे व निगलने मे कठिनाई होती है।

सक्रमण के क्षेत्र मे एक झिल्ली बन जाती है। प्रारम्भ मे झिल्ली कोमल व स्वच्छ होती है बाद मे क्रमश कठिन दृढ व पीले वर्ण की हो जाती है। प्रबल अवस्था मे काली पड जाती है। सभी लक्षण 1-2 दिन मे धीरे-धीरे उत्पन्न होते है। सिरदद, हल्का ज्वर (100-101F) अरुचि, मलिनता क्षीणता, अस्थिरता आदि लक्षण भी उत्पन्न हो जाते है। गले मे सूजन, ग्रीवा अकडन व ग्रीवा ग्रन्थिया मे सूजन आ जाती है। झिल्ली के फैलने से श्वास अवरुद्ध होता है। बच्चो मे आक्षेप उत्पन्न हो जाता हैं।

उपचार – प्रतिविधि रक्तललिका (Antitoxin Serum) बिना किसी देरी किए पेश्यान्तरिक विधि से लगायी जानी चाहिए। यद्यपि इसके देने से कुछ विपरीत कुप्रभाव दिखाई दे सकते हैं लेकिन उपचार मे देरी करना उचित नही है। सीरम को देने से पहले उसे व्यक्ति के तापमान के

समान गर्म कर लेना चाहिए। 600,000 यूनिट मात्रा प्रोकेन पेन्सिलिन "जी" की प्रति 12 घन्टे की दर से 10 दिन तक देते रहना चाहिए।

रूबेला (जर्मन मीजल्स)

यह एक विषाणुजन्य तीव्र सक्रामक रोग है। इसके मुख्य लक्षण हैं – शारीरिक व्याधि, शरीर पर लाल दाने तथा गर्दन की लसिका ग्रन्थियो (Lymphatic glands) मे सूजन। प्राय पाच वर्ष की आयु वर्ग के बच्चे इससे प्रभावित होते है। बच्चे को एक बार रोग होने पर उनमे दीर्घ-काल के लिये रोग प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है। रोग के दुबारा होने की आशंका बहुत कम रहती है। यदि यह रोग गर्भवती महिला को हो जाये तो भ्रूण को क्षति हो सकती है। नवजात शिशुओ मे भी यह रोग हो सकता है।

रोग के विषाणु रोगी के गले, नाक, रक्त, मल मत्र आदि मे पाये जाते है। शरीर पर लाल दाने दिखाई देने के समय से 2-6 दिन बाद यह विषाणु दिखाई देने लगते हैं। विषाण स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे वायु माध्यम तथा सीधे सम्पर्क द्वारा प्रवेश करते है।

अन्तर्विकाल काल रोग का अन्तर्विकास काल 2-3 सप्ताह होता है।

रोग लक्षण

रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे सिरदर्द, खासी, गले मे खराश व दर्द, हल्का ज्वर आदि लक्षण रोगी मे दिखाई देते है। एक दो दिन बाद शरीर पर लाल दाने दिखाई देने लगते है।

सबसे पहले यह दाने चेहरे पर दिखाई देते है। बच्चा मे दाने निकलना पहला लक्षण हो सकता है तथा छितरे, गुलाबी रग के एव मेक्युलर आकार के होते हैं। इसके बाद यह पूरे शरीर पर दिखाई देने लगते हैं। दो तीन दिन बाद हल्के पडने लगते हैं तथा प्राय 3 दिन बाद बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त इस रोग मे गर्दन की लसिका ग्रन्थियो मे सूजन आ जाती है। यह एक विशेष लक्षण है तथा दाने दिखाई देने से एक सप्ताह पूर्व एव दानो के खत्म होने के 10-14 दिन बाद तक लसिका ग्रन्थियो को बढे

हुए अनुभव किया जा सकता है। इन गठियों को छूने पर दर्द होता है। कलाई, अंगुलियां तथा घुटनों मे सूजन आ जाती है एवं दर्द होने लगता है। यह दर्द प्राय 1–14 दिन तक रह सकता है तत्पश्चात ठीक हो जाता है।

रोग की रोक थाम

रोग प्रतिरक्षण टीके – 5 वर्ष से कम आयु वर्ग के बच्चो मे यह टीके लगाये जाने चाहिये। क्योकि यह सक्रमण के स्रोत होते हैं तथा इन्ही से रोग प्रसार होता है। गामा ग्लोब्यूलिन की मात्रा दी जानी चाहिये। प्राय बच्चो व युवाओ मे यह रोग हल्का रुप लिये होता है। लेकिन नवजात शिशु एव गर्भवती महिला मे यह गम्भीर रूप ले सकता है।

उपचार लक्षणो के अनुसार औषधिया दी जा सकती है। एस्प्रिन, परासिटामाल, विटामिन्स, सल्फा या पेन्सलिन दी जा सकती है।

इन्फ्ल्युएन्जा (Influenza)

यह रोग 'ए' व 'बी' प्रकार के विशिष्ट इन्फ्ल्युएन्जा विषाणु द्वारा फैलता है। अचानक सिर दर्द होना, मास पेशीयो मे दर्द होना, ज्वर व पसीना आना, इस रोग के विशेष लक्षण है। इसका सचार बहुत ही तीव्र गति से होता है तथा विश्व भर मे लाखो लोग प्रति वर्ष इससे प्रभावित होते है। सूअर तथा बतख इस विषाणु के लिये सचयागार का काम करते है। इस रोग से प्रत्येक आयु वर्ग के व्यक्ति प्रभावित होते है। लेकिन 5-15 वर्ष की आयु वर्ग के व्यक्ति अधिक प्रभावित होते है। भारत मे यह रोग प्राय ग्रीष्म ऋतु मे होता है, अन्य देशो मे यह सर्दी व वर्षा ऋतु मे व्यक्तियो को प्रभावित करता है।

अन्तर्विकास काल प्राय 18-36 घटे लेकिन यह 3 दिन भी हो सकता है।

रोग प्रसार माध्यम

रोगी के छीकते, खासते व बोलते समय धूल तथा वायु कण दूषित हो जाते है तथा वायु माध्यम से स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँच कर उसे प्रभावित करते है।

रोग लक्षण

विषाणु श्वांस नलिका मे प्रवेश कर ट्रेकिया तथा ब्रोंकस को प्रभावित करते है। ज्वर (100 से 103° फे०), सर्दी लगना, शरीर मे दर्द व पीडा, आँखो का लाल होना व जलन का अनुभव करना, आग व नाक से पानी आना, खासी, कमजोरी आदि इस रोग के मुख्य लक्षण है। रोगी को ज्वर प्राय 1 से 5 दिन तक रहता है। लेकिन रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे रोगी सिर दर्द, पिण्डलियो व पेट का दर्द आदि विशेष लक्षण अनुभव करता है। यह सब लक्षण प्राय 2-3 दिन तक रहते हैं। लेकिन विशेष परिस्थिति मे 7 दिन तक अनुभव हो सकते है। प्यास लगना तथा खाँसते समय सीने मे दर्द होना भी इस रोग के लक्षण हैं। पेट मे भी कभी-कभी दर्द हो जाता है। बच्चो मे कभी कभी दस्त हो सकते है।

रोग से बचने के उपाय

इन्फ्लुएन्जा वेक्सीन के रोग प्रतिरक्षण टीके लगाये जायें। यह टीके रोग फैलने के सम्भावित समय से 2-3 माह पूर्व लगाये जाते है। लेकिन ऐसा सम्भव नही हो सकता क्योकि रोग प्रसार समय का निश्चित होना सम्भव नही है इसके अतिरिक्त सभी को टीके लगाना भी सम्भव नही है। अत बीमारियो के पुराने रोगियो, वृद्ध व्यक्तियो, तथा रोगी के सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियों को टीके लगाये जा सकते हैं जिससे कि रोग द्वारा होने वाली मृत्यु दर को कम किया जा सकें। वेक्सीन की मात्रा 0 5 मि ग्रा। बीमारी की रोक थाम के लिये औषधियो का उपयोग किया जा सकता है।

उपचार

रोगी को आराम करने दिया जाय, एस्प्रिन, नॉवलजिन, पेरासिटामोल, कोडीन, आदि औषधिया दी जा सकती हैं।

मेनिंगोकोकल मेनिनजाइटिस

(Meningococcal Meningitis)

यह एक तीव्र सक्रामक रोग है जो "एन मेनिनजीटाइडिस" नामक जीवाणु द्वारा फैलता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे तीव्र सिरदर्द, कै

(उल्टी) एव ग्रीवा (गदन) अकडन आदि प्रमुख लक्षण रोगी मे दिखाई देते है। कुछ ही घ टो मे रोगी बेहोशी की अवस्था में पहुँच जाता है। यदि रोग का निदान व उपचार शीघ्र एव समय पर हो जाये तो रोगी को बचाया जा सकता है। समय से भी निदान व उपचार होने पर रोगी मृत्यु दर 10 प्रतिशत रहती है। यह रोग 6 माह से अधिक आयु के बच्चो व युवाओ को विशेष रूप से प्रभावित करता है।

इस रोग के जीवाणु कण प्रसरण माध्यम से स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँच कर उसे प्रभावित करते है। सर्दी तथा बसन्त म यह रोग अधिक होता है 6 माह से 1 वष की आयु वाले शिशु अधिक प्रभावित होते है। 25 वष से अधिक आयु के व्यक्तियो मे यह रोग बहुत कम होता है। स्त्रियो की तुलना मे पुरुष अधिक प्रभावित होते हे।

अन्तविकास काल काल 2 से 10 दिवस प्राय 2 से 9 दिवस।

रोग लक्षण

ज्वर, उल्टी, सिरदद, सुस्ती आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। एक चौथाई रोगीयो मे यह लणक्ष वेग होते है तथा शीघ्र ही गम्भीर रूप ले लेते है। प्रारम्भिक अवस्था मे जुकाम, खाँसी, गले मे दर्द आदि लक्षण दिखाई देने लगते हे धीरे धीरे वास्तिक लक्षण दिखाई देने लगते है। उपरोक्त लक्षणो के अतिरिक्त ग्रीवा अकडन (गरदन की अकडन) प्रमुख लक्षण है। रोगी बहोशी की अवस्था मे पहुँच जाता है।

उपचार एव निवारण

जितना सम्भव हो रोगी का उपचार शीघ्र ही आरम्भ करना चाहिये। उपचार के लिए पेनिसिलिन 'जी' (Penicilin G)। की मात्रा एक व्यस्क को 12-24 लाख यूनिट प्रति दिन अ तशिरा माग मे देनी चाहिये। बच्चो म इसकी मात्रा 16 लाख यूनिट प्रति दिन से दी जा सकती है। 7 दिन तक यह मात्रा देने के बाद जब रोगी की अवस्था ठीक हो तो पेनिसिलिन की मात्रा 200-400 मि ग्रा प्रति कि ग्रा शारीरिक वजन प्रति दिन के हिसाब से दी जा सकती है। अन्य औषधिया उपयोग मे लाई जा सकती है।

यह औषधिया उस समय उपयोग मे लायें जब रोगी पेन्सिलीन के प्रति एलर्जिक हो । इसके अतिरिक्त रोगी को द्रव तथा इलेक्ट्रोलाइट्स, विटामिन्स भी दिये जायें । दूसरी व्याधियो से बचाव के लिये भी उपचार किया जाये ।

रोगी के सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो को भी औषधी दी जानी चाहिए । सल्फोनामाइड (1 ग्राम दिन मे दो बार चार दिन तक) तथा रिफाम्पीसीन (600 मि ग्रा दिन मे दो बार चार दिन तक) औषधिया दी जा सकती है । यह मात्रायें वयस्क के लिये हैं ।

रोग प्रतिरोधक टीके

वेक्सीन के टीके लगाकर जन समुदाय को रोग ग्रसित होने से बचाया जा सकता है । 2 वर्ष से कम आयु के बच्चे तथा गर्भवती महिलाओ को वैक्सीन के टीके नही लगाये जाने चाहिये ।

तपेदिक (Tuberculosis)

तपेदिक एक विशेष प्रकार का सक्रामक रोग है जो "माइक्रोबेक्टिरियम ट्यूबरक्युलोसिस" नामक अम्लसह जीवाणु के सक्रमण से फैलता है । क्षय रोग शरीर के किसी भी अवयव, अग या सस्थान को प्रभावित कर सकता है, तथा प्रभावित अग के अनुसार लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं । विशेष रूप से फेंफडे इस रोग से प्रभावित होते है ।

इसके अतिरिक्त अस्थि, मस्तिष्क, मस्तिष्क झिल्ली, लसिका ग्रथिय, नेत्र आदि इस रोग से प्रभावित हो सकते है । रोग का रूप उग्र या जीण तथा स्थानीय या व्यापक हो सकता है ।

रोग के विभिन्न प्रकार

क्षयाणु शरीर के किसी भी अग को सक्रमित कर सकते है । सक्रमित अग के अनुसार रोग के नाम निम्न प्रकार है — फुफ्फुसीय क्षय, सधि क्षय, अस्थिक्षय, कठ क्षय, ग्रथीय क्षय, त्वक (त्वचा) क्षय आदि ।

रोगोत्पादक कारण

1 जीवाणु — क्षय रोग, क्षय जीवाणु (माईक्रोबेक्टिरियम ट्यूबरक्युलोसिस) द्वारा उत्पन्न होता है । ये जीवाणु दण्डाकार या थोडे मुडे हुए,

गतिहीन एव अम्लमह होते है इनके किनारे गोल होते है। ये छोटे समूह मे या अकेले देखे जा सकते है। इनका आकार 0 3–0 5, 5×1, 2–4 म्यू तक होता है।

2 आयु – क्षय रोग किसी भी आयु वर्ग मे हो सकता है लेकिन नवजात शिशु मे तपेदिक बहुत कम होती है शिशुओ मे यह रोग बडी आयु के रोगी व्यक्ति के सम्पर्क मे आने से फैलता है।

3 लिग – भारत मे महिलाओ की तुलना मे पुरुषो मे यह रोग अधिक होता है। पुरुषो मे 45 वर्ष से अधिक की आयु मे तथा महिलाओ मे 35 वर्ष से कम की आयु मे यह ज्यादा होता है। किशोर अवस्था मे लडकियो मे यह रोग लडको की तुलना मे अधिक होता है।

4 कुपोषण – कुपोषित तथा दुर्बल व्यक्ति इस रोग मे अधिक सक्रमित होते है। कुपोषित शिशु को पौष्टिक भोजन देने पर भी यदि उसके शरीर के वजन आदि मे कोई परिवर्तन नही आता है तो उस शिशु का तपेदिक रोग के लिए परीक्षण करवाना चाहिये।

5 खसरे तथा बडी खासी (कुकर खासी/काली खासी) से ग्रसित शिशु मे क्षय रोग होने की सम्भावना अधिक होती है। गरीब अशिक्षित, निम्न वर्ग के व्यक्ति इस रोग से ग्रसित होते है। अस्वच्छता, सीलन भरी अधेरी कोठरिया, भीड-भाड वाली बस्तिया आदि रोग के प्रसार मे सहायक होती है।

6 व्यवसाय – चिकित्सक व रोगी की परिचर्या करने वाले व्यक्ति रोग प्रवण (Vulnerable) हो सकते है।

7 सामाजिक कारण – स्थान-स्थान पर थूकने की आदत, पर्दा प्रथा, छोटी उम्र मे शादी का होना, हुक्के का सेवन आदि अनेक कारण इस रोग के लिए उत्तरदायी है।

रोग प्रसार की विधि

वायु माध्यम से रोग का प्रसार होता है। खासते समय सक्रमित व्यक्ति द्वारा वायु मे थूक के कण मिल जाते है। सक्रमित थूक या कणो के

सम्पर्क मे आने से स्वस्थ मुग्राही व्यक्ति के शरीर मे जीवाणु प्रवेश कर जाते है। जिन सक्रमित व्यक्तियो के थूक मे यह जीवाणु विद्यमान होते है वे व्यक्ति रोग के खुले स्त्रोत होते हैं।

क्षयाणुओ का प्रवेश मनुष्य के शरीर मे श्वास मार्ग व आहार नलिका द्वारा होता है। श्वास मार्ग इसका प्रधान प्रवेश मार्ग है। सक्रमित रोगी के छीकते, खाँसते व बोलते समय थूक के सूक्ष्म कण निकलकर वायु मे मिल जाते हैं जिनके सम्पर्क मे आये व्यक्ति के शरीर मे श्वास मार्ग से यह क्षयाणु शरीर मे प्रवेश कर जाते है। इसी प्रकार रोगी जब कफ थूकता है तो वह धूल मे मिल कर सूख जाता है तथा वायु चलने से धूल कण उडते है तथा उसमे मिले क्षयाणु स्वस्थ मनुष्य के शरीर मे श्वास मार्ग से प्रवेश कर जाते हैं।

दूषित भोजन, दूध, जल आदि सेवन करने क्षयाणु शरीर में प्रवेश कर सकते है। लेकिन इस प्रकार के माध्यमो से रोग प्रसार की सभावना बहुत कम होती है। त्वक (त्वचा) क्षय से पीडित व्यक्ति के शरीर पर विद्यमान व्रण के सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो को भी यह रोग हो जाता है।

अन्तर्विकास - काल

फुफ्फुसीय क्षय श्वास द्वारा क्षयाणु श्वास नली के माध्यम से फेफडो मे प्रवेश कर जाते है। यहा ये वायुकोषो एव प्रणालियो मे अपना स्थान ले लेते हैं जहा छोटी - छोटी ग्रन्थिया बन जाती हैं। रोग की अवस्थानुसार यह ग्रन्थिया मृदु होकर पसयुक्त हो जाती है तथा बाद मे फट जाती है। जब तक यह ग्रन्थिया नही फटती, श्लेश्मा मे पस नही निकलता, थूक क्षयाणुमुक्त रहता है। लेकिन ग्रन्थि के फटने पर उसमे पस व स्राव निकलने लगता है तथा थूक क्षयाणु युक्त हो जाता है।

रोग में सक्रमण की तीव्रता व प्रसार के अनुकूल फेफडे के एक या अधिक खन्ड प्रभावित हो जाते है। रोग की यह अवस्था बहुत गम्भीर होती है। रात्रि मे ज्वर होता है, शरीर क्षीण हो जाता है, रक्ताल्पता होती है, भूख नही लगती, थूक पस युक्त हो जाता है। रोगी की गम्भीर अवस्था मे मृत्यु हो जाती है।

बच्चो मे तपेदिक (प्राइमरी कॉम्प्लेक्स)

शिशुओ मे जिस स्थान से ट्यूबरकल जीवाणु फेफडो मे प्रवेश करते है उस क्षेत्र मे सूजन आ जाती है जिसे प्राइमरी फोकस कहते हैं। यह लगभग कुछ मिली मीटर से 1 या 2 से मी आकार का होता है । यहा से कुछ ट्यूबरकल जीवाणु लसिका वाहनियो के द्वारा लसिका ग्रन्थियो मे पहुँच जाते है। 80 प्रतिशत रोगग्रस्त शिशुओ मे एक ही प्राइमरी सक्रमण क्षेत्र होता है शेष 20 प्रतिशत मे एक से अधिक सक्रमित क्षेत्र हो सकते हैं। प्राइमरी सक्रमण प्राय फैफडो के सर्वाधिक सचालन क्षेत्र को प्रभावित करता है। अत अधिकतर दाइ ओर का फेफडा ट्यूबर सक्रमण से प्रभावित होता है। दाया ब्रान्कस अधिक सीधा, छोटा व चौडा होता है।

यह अवस्था प्राय शिशुओ मे पाई जाती है। प्रारम्भिक अवस्था मे लक्षण बहुत मन्द होते है। प्राय यह अवस्था बिना ध्यान मे आये निकल जाती है। खासी नही होती, लेकिन अन्य लक्षण विद्यमान रहते हैं। आलस्य, निर्बलता, शरीर का भारीपन, सूखी खासी, कभी - कभी वक्ष स्थल मे पीडा का अनुभव होना आदि मुख्य लक्षण है। शिशु चिडचिडा हो जाता है खेलने में मन नही लगता, भूख कम हो जाती है और शिशु जल्दी थकान का अनुभव करने लगता है। रात्रि को ज्वर व पसीने का आना भी प्रधान लक्षण हैं।

रोग के बढने से कष्टदायक खाँसी रात दिन आती है। जिससे बल गम आने लगता है। भोजन में अरूचि, भूख का कम लगना, मनोमालिन्य, शारीरिक क्षीणता, रात्रि मे ज्वर व पसीना आदि लक्षण तीव्र रूप धारण कर लेते है। ज्वर प्राय मध्यान व सायकाल रहता है। प्रात काल मे ज्वर कम रहता है।

नाडी की गति बढ जाती है तथा प्राय कोमल व दुबल अनुभव होती है। कफ की मात्रा बढ जाती है तथा उसमे फुफ्फुस तन्तु व पस आने लगते है। थूक परीक्षण पर क्षयाणु दिखाई देते है। शनै शनै स्थिति बिगडती चली जाती है कफ में रक्त स्त्राव होने लगता है।

निदान

1– एक्सरे – वक्ष का एक्सरे करान स फफड [illegible] पता लग सकता है । क्षय ग्रन्थिया दिखाई देती है ।

2– थूक परीक्षण – थूक का परीक्षण उसका लेप बनाकर तथा जील नेलसन विधि से रजित कर अम्लसह क्षय जीवाणु को देखने के लिये किया जाता है। परीक्षण करने पर लेप मे यह जीवाणु दिखाई देते हैं तो रोगी को क्षय रोग घोषित किया जाता है ।

3– हीफ परीक्षण – अव मिश्रण रहित ट्युवरक्युलिन की बूंद अग्रबाहु की त्वचा पर रखें तथा छ सूइयो की फनल (हीफगन) को इस भाग मे चुभायें जिससे ट्यूबरक्यूलिन त्वचा मे रम जाए । 3–7 दिन वाद इस भाग का परीक्षण करें । यदि कम से कम 4 स्पष्ट पिडीका सूजन क पेप्यूल दिखाई दें तो टस्ट धनात्मक माना जाता है ।

4– रक्त परीक्षण –

(क) लाल व सफेद रक्त कणो की सख्या के लिये एव सफेद कणो की विभेदीय गणना के लिये

(ख) ई० एस० आर० के लिये

रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे यदि उपचार लिया जाये तो रोगी पूर्ण स्वस्थ हो सकता है । अग्रिम अवस्था मे उपचार लेने पर रोग का नियन्त्रण किया जा सकता है ।

उपचार

वर्तमान मे क्षय रोग के उपचार का उद्देश्य रोगो को असक्रमित करना तथा रोग को आगे बढने से रोकना, समुदाय मे सक्रमण को बढने से रोकना । क्षय निरोधक औषधि प्रभावी, सस्ती देने मे आसान व विषाक्ता से मुक्त होनी चाहिये । वर्तमान मे निम्न औषधिया उपयोग मे लाई जाती है–आइसोनेक्स, सेट्रेप्टोमाईसिन, पेराएमिनो सेलिसिलिक

एसिड (पी० ए० एस०) थायासिटाजोन, पायरेजिनामाइड, इयामब्यूटोल रिफाम्पिसिन, साइक्लोसेरिन

क्र स	औषधि	मात्रा	औषधि लेने की विधि
1–	आइसोनेक्स	10–20 मि० ग्रा०	दिन मे एक बार मुख द्वारा सेवन करें।
2–	स्ट्रेप्टोमाइसिन	20–40 मि० ग्रा०	पेरयान्तरिक विधि से एक बार मे
3–	पेराएमिनोसेलीसेलिक एसिड	200-300 मि०ग्रा०	विभक्त मात्राओं मे एक दिन मे दो या तीन बार मुख द्वारा सेवन करें।
4–	थायासिटाजोन	3 मि० ग्रा०	यथा
5–	इयामब्यूटोल	25 मि०ग्रा० बाद मे इस मात्रा को 15 मि० ग्रा० तक कम करें	यथा
6–	रिफाम्पिसिन	10 मि० ग्रा० (अधिकतम 600 मि०ग्रा०)	यथा
7–	पायराजिनामाइड		यथा

थूक परीक्षण पर यदि उसमे यक्ष्मा जीवाणु नही मिले तथा एक्सरे 6 माह तक लगातार सामान्य रहे, ऐसी स्थिति में अन्य सभी औषधियां बन्द कर देनी चाहिये लेकिन आइसोनेक्स को अनुमोदित मात्रा के रूप मे अगले 1 वर्ष तक देते रहना चाहिये। अधिकतर रोगियो मे यह उपचार कम से कम दो वर्ष तक दिया जाता है अर्थात 18 से 24 माह तक की अवधि इस उपचार के लिये उचित है।

क्षय रोग का नियन्त्रण

रोग नियन्त्रण का अर्थ है समुदाय में रोगी दर व संक्रमण को कम करना। संयुक्त राष्ट्र संघ की रोग नियन्त्रण परिभाषा के अनुसार दिया यदि 14 वर्ष आयु वर्ग में क्षय रोगी दर एक प्रतिशत हो जाय तो क्षय रोग को नियन्त्रित माना जा सकता है। नियन्त्रण निम्न बातों पर निर्भर करता है –

1– रोगी का शीघ्र पता लगाना – रोगी के थूक का परीक्षण, वक्ष का एक्सरे परीक्षण, ट्यूबरक्यूलिन परीक्षण, रक्त परीक्षण आदि द्वारा समुदाय में रोगी का शीघ्र पता लगाया जा सकता है। जिन व्यक्तियों में निरन्तर वक्ष ज्वर, पीड़ा, चार सप्ताह से अधिक अवधि में खांसी का आना आदि लक्षण दिखाई दें उन व्यक्तियों में इस रोग की शंका होती है। ऐसे व्यक्तियों में उक्त परीक्षण कर रोग निदान किया जाना चाहिये।

2– औषधि उपचार – रोग निदान होने पर रोगी का उपचार रोग की गम्भीरता के अनुसार शीघ्र आरम्भ करना चाहिये। उपचार प्रभावी एवं पूर्ण होना चाहिये।

3– बी० सी० जी० वेक्सिनेशन – रोग निवारण के लिए बी० सी० जी० के टीके लगाये जाने चाहिये।

4– एक से अधिक औषधि दी जानी चाहिये जिससे औषधि के प्रति जीवाणु की रेजिस्टेन्ट क्षमता न बढ़ने पाए।

5– शिशु को पौष्टिक एवं संतुलित भोजन दिया जाना चाहिये आहार में ऊर्जा व प्रोटीन प्रचुर मात्रा में दिये जाने चाहिये तथा विटामिन एवं खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में दिये जायें।

6– शिशु में रोग के बार बार संक्रमण होने से रोका जाये

7– स्वास्थ्यकर वातावरण में रहना चाहिये। खुली एवं स्वच्छ हवा एवं सूर्य के प्रकाश का सेवन करना चाहिये।

डोमिसिलियरी उपचार

रोगी को चिकित्सालय में बिना भर्ती किये उपचार करना अर्थात केन्द्र में रोगी का निदान होने पर उसे औषधियां उपलब्ध करादी जाये जिससे वह घर पर इन औषधियों को लेता रहे। केन्द्र पर नियमित रूप से जाकर परीक्षण कराता रहे एवं पूर्ण उपचार ले।

**

आंत संक्रमण सम्बन्धी रोग

Intestinal Tract Infection

- बाल पक्षाघात
- हैजा
- दस्त/अतिसार
- आन्त्र ज्वर (टाइफायड)
- एमीबायसिस
- इन्फेक्शियस हिपेटाइटिस
- कृमि रोग

  गोल कृमि, अंकुश कृमि

  सूत्र कृमि

ध्यान देने योग्य बातें

- 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे को खसरा, चेचक, तपेदिक बडी खासी, धनुपबाय आदि बीमारियो के टीके दिलाए तथा पोलियो की खुराक पिलाएं।

- रतौंदे या रतोदी की बीमारी को रोकने के लिए 6 माह की आयु में बच्चे को विटामिन ए के घोल की प्रथम खुराक पिलाएं फिर 6 माह बाद दूसरी खुराक पिलाएं।

- बच्चे के सक्रामक रोग होते ही चिकित्सक को दिखायें जिससे अन्य बच्चो को बचाया जा सकें।

- रोगी के मल–मूत्र को कही दूर फेंके या गाड दें।

- सक्रामक रोग जैसे खसरा, बडी खासी आदि से पीडित बच्चे के पास स्वस्थ मा को न जाने दें।

बाल पक्षाघात
(Polio)

यह एक विषाणु जन्य तीव्र सक्रामक रोग है, जिसकी प्रारम्भिक अवस्था मे आन्त्रशोथ होता है। तत्पश्चात केन्द्रीय नाडी सस्थान को सक्रमित कर पक्षाघात अवस्था उत्पन्न करता है।

रोगोत्पादक कारक तत्व

तीन प्रकार के विषाणु इस रोग के लिए उत्तरदायी है। यह 55° सेन्टीग्रेड पर 30 मिनट तक गर्म करने से नष्ट हो जाते है। मनुष्य ही केवल मात्र इस सक्रामक के सचयगार हैं चाहे वह रोग से पीडित हो या रोगवाहक व्यक्ति के रूप मे। सक्रमित व्यक्ति के गले तथा छोटी आत मे यह विषाणु एकत्रित रहते हैं। यही सक्रमित रोगी रोग प्रसार मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। सक्रमित व्यक्ति का मल ही विषाणु का मुख्य स्त्रोत है।

रोग सचार

विषाणु वायु माध्यम व दूषित पदार्थों के माध्यम से नासिक व मुख द्वारा शरीर मे प्रवेश करते हैं जहा इनकी वृद्धि होती है। यह रोग प्राय शैशवकाल व शिशुओ मे होता है। प्राय 3 वर्ष से कम आयु के बच्चे रोग के अधिक शिकार होते हैं। वैसे 3 माह से 5 वर्ष तक की आयु वर्ग के बच्चे इस रोग मे प्रभावित होते है। 5 वर्ष से ऊपर की आयु के 90 प्रतिशत बच्चो मे रक्षक प्रतिकाय उत्पन्न हो जाती हैं।

अन्तर्विकासकाल

प्राय 7-14 दिवस, लेकिन यह 3-35 दिवस तक का भी हो सकता है।

विपाणु की शरीर मे प्रवेश विधि – विपाणु नासिका व मुख द्वारा व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर गले व छोटी आत मे अपना स्थान बनाते हैं तथा वहा पर वश वृद्धि करते है। आरम्भ मे यह उपचर्मीय कोषा (Epithelial cells) मे पनपते हैं। वहा से यह लसिका ग्रन्थियो (Lymph glands) मे प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात रक्त के माध्यम से केन्द्रीय स्नायु मण्डल मे प्रवेश कर रीढ की स्नायु कोशिकाओ को विकृत करते है। जिससे स्नायु पक्षाघात होकर रोग लक्षण उत्पन्न होते है।

रोग लक्षण

विपाणु के सक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी मे ज्वर, सिर दर्द, सुस्ती, आन्त्रिक उपद्रव आदि लक्षण दिखाई देते है जो एक या दो दिन तक रहते है। यह रोग की लघु अवस्था कहलाती है तथा कई रोगियो मे यह अवस्था 3-7 दिन के अतराल मे विकराल रूप धारण कर लेती है। इस अवस्था को तीन भागो मे विभक्त कर सकते है–

(क) पक्षाघात पूर्व अवस्था– दुबारा तीव्र ज्वर (102°-104°F) व सिर दर्द होता है। मस्तिष्कावरणी प्रकोप (Meningial irritation) होता है जिससे मेरुदण्ड (Spine) के मुडने में कठिनाई होती है। रोगी बहुत सुस्त दिखाई देने लगता है वमन व दस्त होते है। रोगी बेचैन होने लगता है। प्राय बच्चो में प्राकृतिक प्रतिकारिता होन से रोग के घातक प्रभाव से बच जाते हैं। कुछ रोगियो में 23-48 घण्टा में यह अवस्था समाप्त हो जाती है तथा यह अपक्षाघातीय अवस्था कहलाती है लेकिन कुछ रोगियो में इस काल के बाद पक्षाघात हो जाता है।

(ख) पक्षाघात अवस्था – इस अवस्था में ज्वर नही रहता दर्द व मासपेशियों में कठोरता एव कमजोरी निरन्तर बनी रहती है। पिन्डली, जाघ, कमर आदि की मॉस पेशियो को छेडने से बच्चा दर्द के कारण रोने

लगता है। वैसे पक्षाघात किसी भी अंग का हो सकता है लेकिन प्राय पैर ज्यादा प्रभावित होते है। पक्षाघात लगभग 24 घण्ट में पूर्ण रूप ले लेता है तथा कई दिनो तक रहता है। इसमें मांस पेशियां कोमल, दुर्बल, रिफलेक्स हीन हो जाती है। यदि प्रभावित मांसपेशियां एक माह तक किसी प्रकार की क्रिया नहीं करती हैं तो स्थित में सुधार आना कठिन है।

(ग) असाध्य अवस्था – प्रभावित अंग की मास पेशियों की दुर्बलता तथा उसकी विभिन्न क्रमिकता व वितरण के अनुसार अंग की विकलागता व अस्थाई अकडन उत्पन्न हो जाती है। तीव्र रूप से प्रभावित अंग में शिथिलता, ठंडापन व नीलापन आ जाता है यहां तक की उस अंग की हड्डी का विकास रूक जाता है जिससे वह अंग सामान्य से छोटा रह जाता है।

प्रथम अवस्था मे यदि चिकित्सक को रोग ग्रस्त बच्चे को दिखाया जाए तो उसे विकृत होने से बचाया जा सकता है। वैसे इस रोग का निदान प्रारम्भिक अवस्था मे बहुत कठिन है लेकिन उपरोक्त वर्णित प्रथम अवस्था के लक्षण दिखाई देने लगे या आसपास मे पक्षाघात के रोगी होने की स्थिति मे चिकित्सक को दिखाया जाए तो रोग का निदान कर बचाव के उपाय किए जा सकते है।

बचाव के उपाय

पोलियो प्रतिरक्षण के लिये पोलियो वेक्सीन की मात्रा समय पूर्ण वर्णित सारिणी के अनुसार दी जानी चाहिए। मात्रा के एक घंटे बाद तक स्तनपान न कराए। तीन माह की आयु से यह मात्रा दे देनी चाहिए तीव्र सक्रामक रोग, तीव्र ज्वर, पेचिश आदि मे यह मात्रा नही दी जानी चाहिए इसके अतिरिक्त जिस बच्चे मे रोग हो गया हो उसे यह मात्रा नही दी जानी चाहिए।

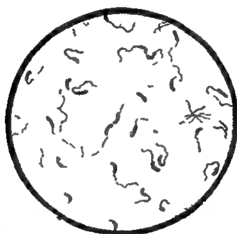
हैजा (Cholera)

हैजा जीवाणु जनित एक तीव्र सक्रामक रोग है जो विब्रियोकोलेरा नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है तथा मुख्य लक्षण हैं वेग के साथ दस्त

आना व उल्टी का होना। तत्पश्चात् उदर मे ऐंठन व मरोड़ें आना। रोग की क्रमिकता लक्षण रहित रोग से गम्भीर रोग की अवस्था तक है। अधिकतर रोगी मन्द रूप से सक्रमित होते हैं। गम्भीर अवस्था मे मूत्र का आना बन्द हो जाता है, रोगी जल अल्पता की स्थिति मे पहुँच जाता है, यदि इस समय द्रव व इलेक्ट्रोलाइट्स नही दिये जाते हैं तो रोगी की मृत्यु हो सकती है।

रोगोत्पादक कारक तत्व

(क) जीवाणु–यह रोग कोलेराविब्रियो व एल्टोरविब्रियो द्वारा होता है जो रोगी के मल व वमन मे विद्यमान होते हैं। यह सक्रीय गतियुक्त व कोमा के आकार के होते है।



(ख) रोग वाहक व्यक्ति–(1) अन्तरकालीय रोग वाहक व्यक्ति वह व्यक्ति जो रोग से मुक्त हो लेकिन उसके मल मे जीवाणु विद्यमान हो, इस वर्ग मे आते है। यह अवस्था उन रोगियो मे आती है जो पूर्ण उपचार नही लेते। कुछ व्यक्तियो मे यह अवस्था 2–3 सप्ताह तक रहती है।

(2) स्वस्थ रोगवाहक – यह व्यक्ति परोक्षरूप से स्वस्थ दिखाई देते हैं लेकिन इनके शरीर मे रोग के जीवाणु रहते हैं। यह दो प्रकार

के होने है घर मे तथा समुदाय मे रहने वाले रोग वाहक । यह अवस्था प्राय 10 दिन तक रहती है ।

(3) चिरस्थाई रोगवाहक व्यक्ति — इन व्यक्तियो के शरीर मे रोग के जीवाणु 3 माह मे अधिक समय तक रहते है। ऐसे व्यक्तियो मे साधारण रूप से त्यागे मल मे यह जीवाणु नही देखे जा सकते, लेकिन विरेचक/दस्तावर औषधि (Purgative) देने पर त्यागे गए मल मे जीवाणु दिखाई देते हैं।

(ग) जीवाणुयुक्त दूषित जल व खाद्य पदार्थों के सेवन से यह रोग होता है। यद्यपि जल मे इनकी सख्या मे वृद्धि नही होती लेकिन जल मे सामान्य तापमान, प्रकाश, लवण आदि की उपस्थिति मे यह दो सप्ताह तक जीवित रह सकते हैं। खाद्य पदार्थो जैसे दूध, दूध उत्पादक वस्तुए आदि मे यह सख्या मे वृद्धि करते हैं खट्टे पदार्थों मे यह जीवाणु नही रहते।

(घ) मक्खी—रोग प्रसार के कारणो मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

रोग प्रसार विधि

—दूषित जल व खाद्य पदार्थो के माध्यम से।

—मल, वमन तथा दूषित वस्त्रो के सम्पर्क मे आने से।

—रोगी के खाने व पीने के बतन के उपयोग से।

अन्तर्विकासकाल-कुछ घण्टो से 5 दिन तक, प्राय 1-2 दिन (6 48 घटे)

शयनिक लक्षण- अचानक उदर मे दर्द, ऐंठन एव दस्त व वमन होने लगते हैं। दस्त पानी के समान या चावल के पानी समान आने लगते हैं। एक दिन मे 40 तक दस्त लग जाते है।

—पानी की अल्पता मे स्थिति गम्भीर हो जाती है, निमग्न नेत्र (Sunkun eyes), धसे हुए कपोल, सामान्य से कम तापमान, नीलापन, श्वास छिछला व तीव्र गति से आता है। नाडी गति बहुत मन्द पड जाती है यहां तक की अनुभव भी नही होती है। रोगी की आवाज अस्पष्ट व भारी हो जाती है।

—रोगी बेचैन हो जाता है, तेज प्यास लगती है, पिंडली व पेट मे ऐंठन अनुभव होती है। रोगी की मृत्यु जल-अल्पता व अम्लीकरण (Acidiosis) के कारण होती है।

रोगो का निदान

(1) मल परीक्षण द्वारा—औषधि देने से पूर्व परीक्षण के लिए मल का नमूना लिया जाना चाहिए। नमूना-रबर केथेटर विधि से या मलाशय से स्वाब विधि द्वारा लिया जा सकता है।

(2) वमन परीक्षण (3) जल व खाद्य पदार्थो का परीक्षण

(4) कल्चर विधि।

रोग उपचार

(1) पुनर्जलीकरण (रीहाइड्रेशन) विधि से उपचार।

(2) औषधियो द्वारा उपचार।

पुनर्जलीकरण विधि—इस विधि से इलेक्ट्रोलाइट व जल की कमी को पूरा किया जाकर रोगी की अवस्था मे सुधार लाया जाता है। यह माना गया है कि ग्लूकोज के सेवन से आँतो द्वारा लवण व जल का अवशोषण करने की क्षमता बढ जाती है। मुख द्वारा दिए जाने वाले द्रव के अवयव निम्न प्रकार हैं—

सोडियम क्लोराइड (नमक)	3 5 ग्राम
सोडियम बाइकार्बोनेट (मीठा सोडा)	2 5 ग्राम
पोटेशियम क्लोराइड	1 5 ग्राम
ग्लूकोज	20 0 ग्राम
जल	1 लीटर

पुनर्जलीकरण मिश्रण के पेकेट आजकल बाजार मे उपलब्ध है। इस प्रकार उपचार सस्ता व सुगम है।

अन्तर्सिरामार्गीय विधि

रोग की गम्भीर अवस्था मे इस विधि द्वारा आइसोटोनिक पोली इलेक्ट्रोलाइट द्रव दिया जाना चाहिए। रिंगर लेक्टेट द्रव दिया जाना चाहिए।

निम्न प्रकार से तैयार किया द्रव भी दिया जा सकता है —

सोडियम क्लोराइड	4 0 ग्राम
सोडियम एसीटेट	5 3 ग्राम
पोटेशियम क्लोराइड	1 0 ग्राम
ग्लूकोज	10 0 ग्राम

द्रव पहले घण्टे मे 2 लीटर तथा दूसरे व तीसरे घण्टे में एक-एक लीटर दिया जा सकता है। तत्पश्चात् रोगी की अवस्थानुसार द्रव की मात्रा दी जा सकती है।

औषधियो द्वारा उपचार

टेट्रासाइक्लिन, डोक्सीसाइक्लिन, सेप्ट्रान, क्लोरएम्फेनिकोल आदि औषधियो मे से उपयुक्त औषधि दी जा सकती है। इन औषधियो के देने से शरीर मे विशेष प्रकार की रक्षक प्रतिकाए उत्पन्न होती है जो आतो मे जीवाणु की वृद्धि को नष्ट करती है। इनके साथ कोर्टिकोस्टीरायड भी दिये जा सकते है। इसके अतिरिक्त रोग लक्षण के अनुसार उपचार दिया जाना चाहिए।

दस्त/पेचिश/अतिसार

बच्चो मे दस्त विभिन्न सक्रामक तत्त्वो के कारण से होते है। दस्त अथवा बार-बार टट्टी जाना बच्चो की आम बीमारी है। पाच वर्ष से कम आयु के बच्चे इससे अधिक प्रभावित होते है। एक वर्ष से कम आयु के बच्चो मे दस्त के कारण कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

दस्त—यह एक ऐसी अवस्था है जिसमे रोगी दिन मे (24 घन्टो) में 3 या 3 से अधिक बार पतले या पानी के समान पाखाना जाता है। पेचिश में मल के साथ खून आने लगता है।

बच्चो मे दस्त होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

(क) आंतो मे रोगाणुओ (जीवाणु और विषाणु) के सक्रमण से दस्त होते हैं।

(ख) परजीवी—कृमि रोग सक्रमण से।

(ग) संक्रामक रोग (ऋतु के रोग) व निमोनिया में भी दस्त हो सकते है।

(घ) कुपोषण—हाजमा खराब हो जाता है। पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है। प्राय कुपोषण व संक्रमण ही दस्त का कारण होते है।

(ड) दूषित दूध एव पानी का उपयोग।

(च) खाने की वस्तुओं पर मक्खियां बैठकर संक्रमण फैलाती हैं तथा संक्रमित खाना खाने से दस्त लगते है।

लक्षण

बच्चा बार-बार टट्टी जाता है जो पानी के समान, नरम या पतली हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त पेट मे दर्द, उल्टी का होना, ज्वर आदि लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। अधिक दस्त लगने पर बच्चों के शरीर मे पानी की कमी आ जाती है। इसे निर्जलीकरण की अवस्था कहते हैं।

उल्टी व दस्त के एक साथ होने पर यह अवस्था और गम्भीर हो जाती है तथा रोगी शीघ्र मौत का शिकार बन जाता है। गभीर अवस्था मे तुरन्त चिकित्सक की राय ली जानी चाहिए।

निर्जलीकरण की पहचान— दस्त से ग्रसित रोगी के शरीर से लगातार पानी व नमक निकलने से निजलन हो जाता है। इस अवस्था मे निम्न लक्षण दिखाई देते हैं—

- प्यास लगने लगती है, जीभ तथा होंट सूख जाते है।
- आंख धस जाती है, सिर का तालु गिरने लगता है। बच्चा बेचैनी अनुभव करता है।
- पेशाब धीरे-धीरे कम हो जाता है यहा तक कि गभीर स्थिति मे पेशाब आता ही नही हैं।

- शिशु सुन पड़ जाता है, बेहोश हो जाता है।
- हाथ पाव ठण्डे पडने लगते है।

उपचार

चिकित्सक की राय के अनुसार रोगी को औषधि दी जानी चाहिए। रोगी को निर्जलीकरण की अवस्था म जाने से बचाया जा सकता है। पुनर्जलीकरण मिश्रण (Rehidration Powder) रोगी को मु ह द्वारा दिया जाना चाहिए। आरम्भ मे बच्चे को 5-10 मिनट मे थोडा-थोडा घोल दिया जाना चाहिए। बाद मे हर बार दस्त करने के पश्चात् बच्चे को एक कप या एक छोटा गिलास भर कर घोल पिलाए। यह घोल तब तक देते रहे जब तक बच्चा अच्छा न हो जाए। जितना द्रव उल्टी व दस्त से बाहर निकलता है उतना ही वापिस इस घोल के माध्यम से दिया जाना चाहिए। बच्चे की तबीयत मे सुधार आते ही वह पुन सजीव हो उठेगा तथा खाने की इच्छा प्रकट करेगा।

बीमार बच्चे को पुनर्जलीकरण घोल के अतिरिक्त सामान्य आहार देते रहना चाहिए। मू ग की दाल का पानी, नारियल का पानी, खूब पका मश किया हुआ केला आदि देना चाहिए। छोटे दूध पीते बच्चे को स्तनपान समय से कराते रहना चाहिए। मा का दूध उत्तम व सुरक्षित आहार है। दूध पिलाते समय मा को सफाई का ध्यान रखना चाहिए। अति गभीर स्थिति मे चिकित्सक को दिखाए।

पुनर्जलीकरण मिश्रण— यह बाजार मे तैयार मिलता है। मिश्रण के पैकेट बाजार मे उपलब्ध हैं। लेकिन घर पर भी बनाया जा सकता है —

नमक पिसा हुआ	1 चाय का चम्मच
मीठा सोडा	1 चाय का चम्मच
ग्लूकोज या चीनी	4 भरे हुए चाय के चम्मच ग्लूकोज के या 8 भरे हुए चाय के चम्मच चीनी के।

इन सबको १ लिटर स्वच्छ पानी मे मिला कर घोल तयार कर लें। अच्छा यही होगा कि पानी को पहले उबाल लें फिर ठडा कर मिश्रण को मिला लें। ध्यान रहे यह घोल १२ घन्टे से अधिक समय तक नही रखना चाहिए और न ही इसे गम करना चाहिए।

यदि घर मे चीनी नही हो तो नमक व गुड भी काम मे लाया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बिन्दु

1 दस्त सक्रमण से होता है। मक्खिया व गन्दगी भोजन के माध्यम से सक्रमण फैलाती है। अत खाने पीने की वस्तुओ को मक्खियो से बचायें। खाने की वस्तुओ को ढककर रखें।

2 बोतल से दूध पीने वाले बच्चे को सक्रमण से बचाए। बोतल व निपल को अच्छी तरह गम पानी से साफ करें।

3 घर के आस पास गन्दगी व मक्खिया को न होने दें।

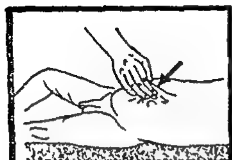
4 पीने तथा भोजन पकाने के लिये स्वच्छ पानी का उपयोग करें। दूषित स्रोतो के पानी को उपयोग मे न लाए। ऐसे स्रोतो के पानी को उबाल कर प्रयोग मे लाए।

5 मल त्यागने के लिए शौचालय का उपयोग करें। शौचालय न हो तो घर से दूर गड्ढो का उपयोग करें तथा मिट्टी से भर दें।

6 खाने के पहले, बच्चे द्वारा खाना खा लेने के बाद व शौच जाने के बाद हाथ हमेशा साबुन से अच्छी तरह से धोए।

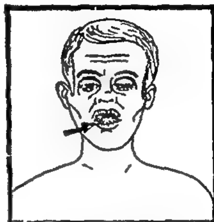
7 नाखून व हाथ हमेशा साफ रखें। नाखून बढने न दें।

दस्त से पीड़ित शिशु मे दिखाई देने वाले लक्षण





ऊपर उदर की ढीली त्वचा
नीचे दबा हुआ तालु

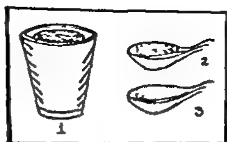


पानी की कमी से सूखे हुए जीभ
व होंट तथा धसी हुई आँखे

(विश्व मे प्रतिवर्ष 50 लाख छोटे बच्चे केवल दस्त के रोग से ही काल के ग्रास हो जाते हैं जिन्हें समय पर रीहाइड्रेशन मिश्रण अर्थात् चीनी, नमक व पानी के घोल को पिलाकर गम्भीर अवस्था मे जाने से बचाया जा सकता है। गम्भीर अवस्था में बच्चे को चिकित्सक को दिखायें घोल में चीनी की सही मात्रा में होना आवश्यक है। नमक व पानी के साथ चीनी के होने से शरीर में तरल पदार्थ को सोखने की क्षमता 2500 प्रतिशत बढ़ जाती है। दस्त से पीड़ित बच्चो को यह घोल पिलाकर विश्व के 13000 बच्चे प्रतिदिन बचाये जा सकते है।)

पुनर्जलीकरण घोल बनाने की विधि

एक गिलास घोल के लिये



1 एक गिलास पानी 2 एक चम्मच चीनी 3 $\frac{1}{8}$ चम्मच नमक

पीलिया (Jaundica)

यह रोग किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति/बच्चों को हो सकता है। लेकिन अधिकतर बडी आयु के बच्चो या युवा व्यक्ति इससे प्रभावित होते है। प्राय बच्चे गम्भीर अवस्था में पहुच जाते हैं। यह रोग विशेष विषाणु से उत्पन्न होता है। आरम्भ मे इसके लक्षण प्रतीत नही होते धीरे-धीरे रोगी की आख पीली दिखाई देनी हैं। कुछ दिनो में त्वचा भी पीली दिखाई देने लगती है।

कारक तत्व

रोग के विषाणु रोगी के मल में होते हैं। अत इस रोग का प्रसार रोगी के मल दूषित जल, भोजन व दूध द्वारा होता है।

लक्षण

रोगी मे निम्न लक्षण सक्रमण से तीन से छ सप्ताह के अन्दर दिखाई देते हैं–ज्वर, भूख का न लगना, जी मिचलाना, कभी कभी उल्टी का आना, चिकने भोजन के प्रति अरुचि, सिर में दर्द आदि कुछ मुख्य लक्षण है। रोगी कमजोरी अनुभव करता है। आखो में तथा नाखुनो में पीलापन दिखाई देता है। पेशाब पीला आने लगता है।

निवारक उपाय

1. खाना खाने से पहले, बच्चे द्वारा खाना खा लेने व शौच जाने के बाद हाथ अच्छी तरह धो लेने चाहिए।
2. पीने तथा भोजन पकाने के लिए स्वच्छ पानी का उपयोग करें। दूषित स्त्रोतों के पानी को उबाल कर प्रयोग में लाए।
3. घर के आसपास गन्दगी व मक्खियों को उत्पन्न न होने दें।
4. बाजार में कटे हुए फल व मिठाइयां न खाएं।
5. मल त्याग ने के लिए शौचालय का उपयोग करें।

उपचार

साधारण रूप से पीड़ित रोगी का घर पर ही उपचार किया जा सकता है। रोगी को पूर्ण आराम दें, पौष्टिक आहार व विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स दें। इस रोग के लिए कोई विशेष औषधि नहीं है। गम्भीर अवस्था में चिकित्सालय में उपचार कराएं।

आंत्र ज्वर (टाइफाइड - ज्वर)

Typhoid Fever

यह एक तीव्र संक्रामक रोग है जो साल्मोनेलाटाइफस जीवाणु के संक्रमण से होता है सिरदर्द, ज्वर, पेट में बेचैनी, पेट दर्द, कमजोरी आदि इसके मुख्य लक्षण हैं। रोग के जीवाणु स्वस्थ व्यक्ति तक खाद्य पदार्थों एवं पानी के माध्यम से पहुंच कर रोग ग्रसित करते हैं। रोगी के मल व मूत्र में यह जीवाणु रहते हैं। यह रोग किसी भी आयु वर्ग के व्यक्तियों को हो सकता है। लेकिन 10–30 वर्ष की आयु वर्ग के व्यक्ति अधिक प्रभावित होते हैं। एक बार रोग होने पर व्यक्ति रोग प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है जो दीर्घकालीन होती है। दूसरी बार रोग बहुत कम होता है। रोग जीवाणुओं के निये व्यक्ति हो संचायागार का कार्य करता है। समाज के रोग वाहक व्यक्ति ही संक्रमण के स्रोत होते हैं यह बीमारी वर्षा के किसी

माह में हो सकती है। लेकिन अगस्त व सितम्बर मे रोग की संख्या अधिक होती है।

निम्न स्तर का खान पान, अस्वास्थ्यवर्धक वातावरण, अशिक्षा आदि भी इस रोग के प्रसार में सहायक होती है। अन्तर्विकास काल प्राय 10–15 दिन लेकिन यह 4 दिन से 4 सप्ताह तक भी हो सकता है।

रोग के लक्षण

रोग का प्रारम्भिक अवस्था मे सिरदर्द, सुस्ती, भूख, का कम लगना तथा ज्वर, प्रमुख लक्षण होते है। सर्दी लगना, ज्वर का नियमित रुप से चढना कब्ज, पेट मे बेचनी आदि लक्षण भी विद्यमान होते है।

सूखी खासी, नाक से खून आना आदि लक्षण भी दिखाई दे सकते है। पेट दर्द, कब्ज, पेट मे अफारा आना आदि लक्षण रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे देखे जा सकते हैं।

उपचार

टाइफायड ज्वर के उपचार हेतु क्लोरएम्फेनिकोल सर्वोत्तम औषधी है। इसकी मात्रा 50 मि० ग्रा० प्रति कि० ग्रा० शारीरिक वजन की दर से एक वयस्क को 2000 मि० ग्रा० प्रतिदिन दी जानी चाहिए। यह मात्रा 3–4 भागो मे विभिक्त कर दिन मे 3–4 बार 6–8 घण्टे के अन्तराल से दी जा सकती है। रोगी की अवस्था सुधार होने पर इस मात्रा को कम करके 30 मि० ग्रा० प्रति कि० ग्राम शारीरिक वजन की दर 2 सप्ताह तक दी जानी चाहिए। उपचार के 7 दिन बाद एम्पीसिलीन 500 मि० ग्रा० प्रति 6 घण्टे से एक सप्ताह तक देनी चाहिये जिससे रोग पुन न होने पाए। साथ मे विटामिन्स दिये जाने चाहिए विशेष रूप से विटामिन बी कॉम्पलेक्स।

निवारक के उपाय

रोग प्रतिरोधक टीके – टाइफॉयड वक्सीन के टीके लगाए जाने चाहिए। यह बहुत ही प्रभावकारी है। एक वयस्क को 0 5 मि० ली०

मात्रा मे 4–6 सप्ताह के अन्तराल पर दो टीके लगाए जाने चाहिए। बच्चो के लिए विशेष वेक्सी द्रवित (diluted) रूप मे उपलब्ध है, दी जा सकती है। टीका लगाने से व्यक्ति के शरीर मे रोग प्रतिकारिता 3 वर्ष के लिए उत्पन्न हो जाती है। अत टीका प्रति 3 वर्ष से सवर्धन टीके रूप मे लगाया जाना चाहिए।

रोगी का औषधियो से उपचार किया जाना चाहिए तथा उसे अलग कमरे मे रखा जाए। मल-मूत्र तथा वस्त्र आदि का निस्सक्रमण किया जाना चाहिए। रोगी के सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के रोग प्रतिरोधक टीके लगाए जाने चाहिए। रोगीयो का सर्वेक्षण करवाया जाए। स्वास्थ्य शिक्षा दी जाए। रोग-जीवाणु वाहक व्यक्तियो का पता लगाकर उपचार किया जाए।

एमिबॅयसिस (Amaeblasis)

एमोबायसिस, एन्टएमीबा हिस्टोलीटिका नामक परजीवी के सक्रमण से होता है। इस अवस्था मे परजीवी पिडीत व्यक्ति के शरीर मे आश्रय लेते है। तथा प्राय आंत प्रभावित होती है। लेकिन लिवर, फैफडे, मस्तिक, स्पलीन, त्वचा आदि भी प्रभावित हो सकती है। प्रभावित अग या सस्थान के अनुसार उस अवस्था को नामाकित किया जाता है तथा लक्षण भी। प्रभावित व्यक्ति मे रोग के लक्षण विद्यमान हो भी सकते हैं और नही भी। परजीवी से सक्रमित व्यक्तियो मे से केवल दस प्रतिशत मे रोग के लक्षण दिखाई देते हैं।

यह रोग विश्व के सभी भागो में होता है तथा विश्व की लगभग 10% जन सख्या इससे प्रभावित है। यह प्राय उन स्थानो पर होता है जहाँ स्वच्छता की व्यवस्था अच्छी नही होती है।

रोगोत्पादक कारण

यह रोग एटएमीबा हिस्टोलीटिका नामक परजीवी के सक्रमण से होता है। मनुष्य ही इस परजीवी के सचयागार तथा स्रोत हैं तथा बडी आत मे यह परजीवी एकत्र रहते हैं। यह किसी भी आयु के व्यक्ति

को प्रभावित कर सकता है। परजीवी की कोष्ठ (सिस्ट) अवस्था संक्रमित होती है जो कि बाहरी वातावरण में कई सप्ताह तक जीवित रह सकती है। सूर्य के प्रकाश व गर्मी से या उबालने पर ये कोष्ठ नष्ट हो जाती हैं। रोगी के मल से मिट्टी संक्रमित हो जाती है तथा हरी सब्जी, पत्तिदार सब्जी आदि के माध्यम से कोष्ठ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं एवं व्यक्ति को संक्रमित करती है। इसी प्रकार संक्रमित पानी भी रोग प्रसार में सहायक होता है।

रोग प्रसार के माध्यम

संक्रमित खाद्य पदार्थ तथा पानी रोग प्रसार के प्रमुख स्रोत हैं। संक्रमित स्थान पर या संक्रमित पानी से तैयार हुयी व पत्तिदार सब्जियों के उपयोग से व्यक्ति संक्रमित होता है। विशेष रूप से कच्ची सब्जियां खाने से कोष्ठ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। अंगुलियों तथा नाखुनों में लगी कोष्ठ भी खाना खाते समय मुख मार्ग से शरीर में प्रवेश कर व्यक्ति को संक्रमित करती है। मक्खियां भी रोग प्रसार में सहायक होती हैं।

अन्तर्विकास काल

प्राय 3 से 4 सप्ताह लेकिन इससे कम भी हो सकता है।

रोग लक्षण

पीड़ित व्यक्ति के शरीर में रोग लक्षण प्रभावित अंग या संस्थान के अनुसार होंगे।

आँत संक्रमित - एमिबायसिस

इस अवस्था में रोगी को दस्त लगते हैं। यह बदबूदार पतले या पानी के समान होते हैं तथा 4-5 दस्त प्रति दिन लग जाते हैं। कभी - कभी दस्तों में खून तथा आंव आती है बीच बीच में सामान्य पाखाना भी आता है। यह अवस्था कई महिना या वर्ष तक रहती है। पेट में दर्द का अनुभव होता है तथा रोगी के उदर परीक्षण पर बाईं ओर की बड़ी आँत वाले भाग को दबाने से रोगी को दर्द का अनुभव होता है। यकृत बढ़ा हुआ हो सकता है तथा उसे स्पर्श करने पर रोगी पीड़ा का अनुभव करता है।

लगभग 50% रोगीयो में रोग लक्षण अचानक होते है तथा रोगी को ज्वर (104° फ़°), तीव्र उदर पीडा, खून के दस्त लग सकते हैं। गर्भवती महिला में यह लक्षण गम्भीर रूप ले सकते हैं।

रोग की जटिलतायें

अल्सरेटिव कोलाइटिस, एपेन्डीसाइटिस आदि इस रोग की प्रमुख जटिलतायें हैं। हिपेटिक एमीबॉयसिस यकृत सक्रमित एमीबॉयसिस पोर्टल शिरा से परजीवी यकृत तक पहुँच कर उसे सक्रमित करते हैं।

रोग का निदान

रोग ग्रसित व्यक्ति के मल को परीक्षण करने से उसमें कोष्ठ तथा ट्रोपनोजायट दिखाई देंगे।

रोक-थाम के उपाय

खाद्य पदार्थ, सब्जियो, पानी, फल आदि को सक्रमण से बचायें। पानी को उबाल कर तथा छानकर उपयोग मे लायें। क्लोरिन द्वारा पानी का निस्सक्रमण करने से सिम्ट नही मरती। कच्ची हरी व पत्तीदार सब्जिया उपयोग मे न लाये। रोगी के मल को कही दूर गड्डे मे फेंके। खाना खाने से पहले हाथ व अगुलियो को साबुन व शुद्ध पानी से भली प्रकार धो लें। अगुलियो के नाखून न बढने दें। स्वास्थ्य शिक्षा दी जाये। रोगीयो का शीघ्र पता लगाकर निदान किया जाये तथा उनका भली-भाति उपचार किया जाये।

उपचार

उपचार मे मुख्य उद्देश्य हैं — रोगी को रोग लक्षणो से आराम दिलाया जाये। द्रव इलेक्ट्रोलाइटस एव रक्त की कमी को पूरा किया जाये तथा परजीवी को नष्ट किया जाय।

फ्यूरामाइड औषधी बहुत ही प्रभावी है। इसके अतिरिक्त डाईआइडो हाइड्रोक्सीक्विन औषधी भी बहुत लाभकारी है। मेट्रानिड जोल औषधी बहुत उपयोग मे लाई जाती है तथा प्रभावकारी है।

औषधी	मात्रा	अवधि
डाईआइडोहाइड्रोक्सीक्वन	600 मि ग्रा दिन मे तीन बार	20 दिन तक
या-डाइलोक्सेनाइडफ्युरोएट	500 मि ग्रा दिन मे तीन बार	10 दिन तक
या मेट्रानिजजोल	750मि ग्रा दिन मे तीन बार	5 से 10 दिन तक

तीव्र तथा गम्भीर अवस्था मे उपरोक्त औषधी तथा इमेटिन (1 मि ग्रा प्रति दिन 5 दिन तक) पेश्यान्तरिक विधि से दी जाय।

विषाणु/सक्रमण जन्य हिपेटाइटिस

(Viral/Infectious Hepatitis)

यह विषाणु जन्य तीव्र सक्रामक रोग है जिसके मुख्य लक्षण हैं— मालिन्य, भूख न लगना, मिचली का आना आदि। तीव्र अवस्था मे पीलीया, हिपेटिक मूर्छा तथा अन्तिम अवस्था मे रोगी की मृत्यु हो सकती है। इसे विषाणु जन्य हिपेटाइटिस 'ए' (Viral Hepatitis A) भी कहते है। यह बीमारी विश्व के सभी भागो मे होती है।

कारक तत्व

यह बीमारी बच्चो तथा युवाओ मे अधिक होती है। 40 वर्ष बाद की आयु के व्यक्तियो मे कम होती है। भारत मे पूरे वर्ष मे कभी भी यह बीमारी हो सकती है लेकिन बसन्त व सर्दी मे यह रोग अधिक होता है। घनी आबादी वाले क्षेत्र, गरीबी तथा गन्दगी इस बीमारी के प्रसार मे सहायक है। सक्रमित पानी, खाद्य पदार्थ इस रोग के मुख्य स्रोत है।

सक्रमण सचार विधि

रोग का सचार रोग ग्रस्त व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति तक सक्रमित पानी, खाद्य पदार्थों के माध्यम से होता है। रोगी के तीव्र सक्रमण अवस्था मे उसके मल मे विषाणु होते है। यह विषाणु सचार माध्यमो की सहायता से पानी तथा खाद्य पदार्थों को सक्रमित करते है जिनके उपयोग करने से स्वस्थ व्यक्ति सक्रमण का शिकार होता है। रोगी के सक्रमित रक्त तथा सीरम भी रोग-सचार मे सहायक होते हैं।

अन्तर्विकास काल

प्राय 20-35 दिन लेकिन 15-20 दिन भी हो सकता है।

रोग लक्षण

रोग ग्रसित व्यक्ति सिर दर्द, सर्दी लगना तथा मालिन्य का अनुभव करता है। प्रारम्भिक अवस्था मे उसे भूख कम लगती है। तत्पश्चात मिचली, कै आना, दस्त लगना आदि लक्षण दिखाई देते है। उदर के ऊपरी भाग मे तेज दद होता है। यकृत बढ जाना है तथा उसे छूने से दर्द होता है। गदन की लसिका ग्रन्थिया बढ जाती है जिन्हे छूने से दर्द होता है। खासी व गले मे दर्द का अनुभव भी हो सकता है। एक दो सप्ताए मे पीलीया दिखाई देने लगना है तथा यह धीरे-धीरे और अधिक गहरा हो जाता है। इस अवस्था में रोगी को भूख लगने लगती है। क का आना, मिचली का अनुभव होना व दस्त लगना आदि लक्षण धीरे-धीरे लुप्त हो जाते है। कुछ सप्ताह में रोगी स्वत ही ठीक होने लगता है। मृत्यु दर बहुत कम है।

निवारक उपाय

समाज या समुदाय मे रोग की सदेहात्मक स्थिति मे व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सामान्य स्वास्थ्य विधियाँ तथा रोगी के मल-मूत्र आदि को नष्ट करने की सही व्यवस्था करनी चाहिए। मक्खियो को नष्ट करना आव-श्यक है।

रोग के विषाणु रोगी के मल माध्यम से सचारित होते हैं। मक्खियों द्वारा खाद्य पदार्थो तक यह विषाणु पहुच कर उन्हें संक्रमित करते है। मनुष्य जब इन खाद्य पदार्थों का उपयोग करता है तो वह सक्रमित हो जाता है। अत इस पूण कडी को समाप्त करना चाहिए। रोगी के मल तथा मक्खिया को नष्ट करने की पूण व्यवस्था होनी चाहिए। व्यक्तिगत स्वच्छता रखनी चाहिए, पानी व खाद्य पदार्थो को ढक कर रखें,

पानी उबाल कर पीए, पानी को निस्सक्रमण करने के लिए ब्लीचिंग पाउडर तथा क्लोरीन का उपयोग करें, दूध उबाल कर पीए तथा ढक कर रखें।

रोग के विषाणु रक्त तथा सीरम मे भी विद्यमान होते हैं अत रोगी के लिए उपयोग मे लाई सिरिंज तथा सुई को भली प्रकार निस्सक्रमित करें।

रोग प्रतिरक्षण टीके — इम्युनोग्लाबिन के टीके लगाये जायें।

उपचार

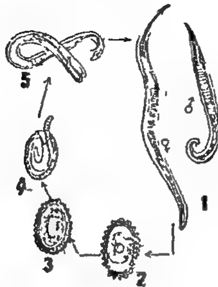
बीमारी के लिए कोई विशेष औषधि नही है। रोगी को आराम करने दिया जाए। व्यक्तिगत स्वच्छता, शुद्ध व ताजा हवा, सूर्य के प्रकाश आदि की व्यवस्था की जाए। खाने मे कार्बोहाइड्रेट अधिक दें तथा कैलोरी एव प्रोटीन की मात्रा कम दें। ग्लूकोज, फल तथा गन्ना का रस आदि अधिक दिये जायें। सामान्यतया विटामिन बी काम्प्लेक्स दिया जाय। छाछ का उपयोग करें। कुछ ही दिनो मे इस प्रकार क उपचार से रोगी स्वस्थ हो जाता है। कुछ अवस्थाओ मे रोग गम्भीर रूप ले लेता है अत ऐसी स्थिति मे चिकित्सक से परामर्श करें।

कृमि रोग

(Worm diseases)

बच्चा मे कृमि रोग प्राय पाया जाता है। कृमि रोग से ग्रसित बच्चे कमजोर व चिड़चिड़े होते है तथा शारीरिक विकास भी सामान्य नही होता है। कृमि परजीवी समूह मे आती है तथा विभिन्न प्रकार के होते हैं— जैसे गोल कृमि (Round worm) अंकुश कृमि (Hook worm), सूत्र कृमि (Thread worm), फीता कृमि (Tap worm)। ये बिना रीढ की हड्डी वाले प्राणी हैं तथा मानव शरीर की आतो मे आश्रय लेते है।

गोल कृमि



1 परिपक्व नर एव मादा कृमि — 2 व 3 अण्डे का मिट्‌टी मे विकास
4 अण्डे से लार्वा का बाहर निकलना 5 आठ दिन की आयु का लार्वा

गोल-कृमि

(Ascaris Lumbricoides, Round worm)

यह सबसे अधिक सक्रमित करने वाला कृमि है तथा ॥ वर्ष से कम उम्र के बच्चो मे पाया जाने वाला एक सामान्य परजीवी है। यह कृमि लगभग 2 5 से मी लम्बा होता है तथा छोटी आत के ऊपरी भाग मे रहता है। मादा कृमि लगभग 200,000 अण्डे रोजाना देती है तथा यह अण्डे मल के माध्यम से बाहर आ जाते है। ताजा दिये गये अण्डे सक्रमण नही करते लेकिन नम व ठण्डी भूमि मे परिपक्व होकर लगभग 2 सप्ताह की अवधि मे सक्रमणशील हो जाते हैं। इस दौरान अण्डा लार्वा मे परिपक्व हो जाता है और ऐसे अण्डे भ्रूणीकृत अण्डे कहलाते हैं।

जीवन चक्र

भ्रूणीकृत अण्डे दूषित भोजन या हाथो के माध्यम से शरीर मे प्रविष्टकर जाते है तथा आँत मे आश्रय लेते हैं जहा कुछ समय

पश्चात इनमे से लावा मुक्त हो जाते है। यहाँ से लार्वा रक्तधारा मे प्रवाह कर फफडो मे पहुँचता है तथा वहाँ से श्वास नली में आराम करता है फिर आहार नलीका माग से निगल लिया जाता है तथा रोगी की आत मे दोबारा आ जाता है। यहा कृमि वढने लगता है और प्रोढ अवस्था मे पहुँचता है। प्रोढ कृमियो के बनने में लगभग 2 माह लग जाते है इसका जीवन काल लगभग एक वष होता है।

आत मे कृमि की प्रक्रिया

कृमि अपना भोजन आत मे लेती है तथा आत की भीतरी परत मे परिवद्ध न करती है जिससे भोजन के पोषक तत्वो के सामान्य अवशोषण में बाधा पहुँचती है। इसके अतिरिक्त यह एक विषैला पदाथ भी उत्पन्न करते है जो आत की सकुचन दर को वढाता है, फलस्वरूप पोषक तत्वो का अव शोषण आतो द्वारा नही हो पाता है।

''एस्केरस नामक पदाथ भी आता से वनने लगता है जो पाचक एजाइमो की पाचन क्षमता को कम करता है फलस्वरूप भोजन भली प्रकार पच नही पाता है। इन सभी प्रक्रियाओ के परिणाम स्वरूप विटामिन "ए", प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट के अवशोषण में बाधा आती है। रोगी कमजोर होता चला जाता है।

रोग लक्षण

रोगी के पेट में दर्द, मिचली की शिकायत, कभी कभी दस्त लगना, कमजोरी, भूख का कम लगना आदि लक्षण प्राय देखने को मिलते है। रोगी के मल में लम्बे गोल कीडे आने की शिकायत होती है। अधिक सख्या में होने पर आत को अवरुद्ध कर सकते है। इसके अतिरिक्त त्वचा पर एलर्जी उत्पन्न हो जाती है। पेंक्रियाज में प्रवेश होने से उसको अवरुद्ध कर उसका इन्फलेमेशन कर सकते है।

कभी-कभी पेट में इतना तेज दर्द होता है कि दर्द एपेंडिक्स की तरह महसूस होता है।

निवारक उपाय

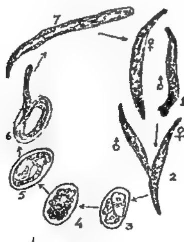
दूषित भोजन न खाएं। हरी सब्जी उबाल कर खाएं। स्वच्छ व सुरक्षित पानी पिएं बच्चो हरी सब्जी खाने से पहले उसे अच्छी तरह पानी से साफ कर लें। मल त्याग कही दूर करें, अच्छा यही होगा कि शौचालय का उपयोग किया जाए।

अंकुश कृमि

(*Ancylostoma duodenale, Hook worm*)

इसका संक्रमण प्रौढ व्यक्तियो मे अधिक होता है लेकिन कभी-कभी बच्चो मे यह रोग दिखाई पडता है। कृमि का अगला सिरा हुक की तरह मुडा होता है इसलिए इसे अंकुश कृमि कहते हैं यह गुलाबी या भूरे रंग की 1 5 से मी लम्बे होते है। इसकी मुखगुहा मे तेज दात होते हैं जो रोगी की आंतो की दीवार से चिपके रहने मे मदद करते है। मादा कृमि रोग लगभग 25,000 अंडे देती है। अंडो पर हाएलाइन का आवरण होता है।

अंकुश कृमि



1 परिपक्व नर एव मादा कृमि 2 नर एव मादा कृमि का संयोग
3 से 5 अण्डो का मिट्टी मे विकास 6 अण्डे से लार्वा का बाहर निकलना
7 व 8–दस दिन आयु का लार्वा

जीवन चक्र

अडे रोगी के शरीर से मल द्वारा बाहर निकलते हैं। अडे की वृद्धि के लिए 20 25 डिग्री से तापमान व नमी चाहिये। अडे से लार्वा 48 घटा के भीतर बन जाता है। यह लार्वा परिपक्व होकर एक सप्ताह मे सक्रमण शील बन जाता है तथा व्यक्ति के पाँव की त्वचा को भेद कर नए परपोषी के शरीर मे प्रवेश करता है। त्वचा से रक्त सचार के माध्यम से लिवर व फेफडे मे से होता हुआ आहार नली द्वारा आमाशय मे पहुँचता है। फिर आतो मे प्रवेश करता है जहा अपने तेज दाँतो की सहायता से आँत की दिवार को नष्ट कर खून चूसना शुरु कर देता हैं। यह अपना स्थान बदलता रहता है। अत आत के बडे भाग को हानि पहुँचाता है। यह एक स्थान पर लग भग कुछ मिनट से लेकर 2 घण्टे तक रहता है। जिस स्थान को छोडता है वहाँ रक्त बहने लगता है।

यह दिन भर मे 0 2 मि ली रक्त चूस लेता है। अत अधिक कृमि होने से काफी मात्रा मे रक्त हनन होता है। यदि 100 कृमि किसी रोगी की आत मे हो जाते हैं जो प्रति-दिन लगभग 25 मि ली रक्त चूस लेती हैं।

लक्षण

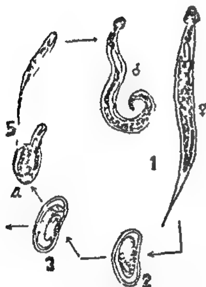
रोगी के शरीर मे रक्त की काफी मात्रा का ह्रास होता है अत लोहे की कमी वाला एनिमिया हो जाता है। रोगी कमजोर हो जाता है, थकावट महसूस करता है, निर्जीवता व धडकन के लक्षण दिखाई देते है। पेट मे दर्द व कभी-कभी मल मे रक्त आ सकता है। फेफडो में जाने से दमे का रोग हो जाता है। जिस स्थान से त्वचा में प्रवेश करता है वहा "पाद खुजली" हो जाती है।

सूत्र कृमि

(Enterobius Vermicularis Thread worm)

अधिकतर बच्चे सूत्र कृमि से प्रभावित होते हैं। यह सक्रमण आमतौर पर बच्चो मे पाया जाता है। सूत्र कृमि सफेद छोटे आकार के धागे के

समान दिखाई देते हैं । प्रौढ कृमि लगभग 1 से मी लम्बे होते हैं । मादा कृमि बडी आंतो मे अण्डे देती हैं । अडो मे मुडे–तुडे या कुण्डलित लार्वा निकलते हैं । इससे सक्रमित बच्चे प्राय गुदा के चारों ओर खुजली चलाते रहते है । रोगी के मल मे यह सफेद कृमि चलते फिरते दिखाई दे सकते हैं । यह कृमि बडी आंत मे रहते है ।



सूत्र कृमि

1 परिपक्व नर एव मादा कृमि
2 नवजात अण्डा
3 अण्डे मे लार्वा का विकास
4 अण्डे से लार्वा निकलना
5 लार्वा



आंत मे कृमियो की स्थिति

कृमि के अण्डे बिस्तर या तौलिये द्वारा अथवा खिलौने के माध्यम से दूसरे बच्चे, व्यक्ति तक पहुच जाते हैं । वायु के माध्यम से कुर्सी, मेज, फर्श, दीवार आदि पर आ जाते है । यह मुख द्वारा शरीर मे प्रवेश करते हैं । बच्चो में स्वसक्रमण एक आम बात है । बच्चे गुदा के चारो ओर खुजाते

~हते हैं जिसमे वे नाखून व अगुलियो के द्वारा अण्डे मुख तक ले जाते है । ये सक्रमणशील अण्डे बच्चे की आतो तक पहुच जाते है । वहा छोटी-आंत में इनमें से लार्वा निकलते हैं जो लगभग दो सप्ताह में प्रोढ कृमि बन जाते है । कभी-कभी गुदा के चारो ओर वाले क्षेत्र में गये अण्डे तुरन्त सक्रमणशील लार्वा म परिवर्तित हो जाते हैं जो फिर से आत में प्रविष्ट होकर प्रोढ कृमि बन जाते है । यह प्रतिगामी (Retrograde) सक्रमण कहलाता है ।

लक्षण

पेट मे दर्द, कब्ज, जी मिचलना, उल्टी का होना आदि सामान्य लक्षण है । बच्चा कमजोर व एनीमिक हो जाता है । रोगी बच्चा प्राय गुदा के क्षेत्र मे खुलजी चलाता दिखाई देता है । बच्चा स्वभाव में चिड चिडा हो जाता है ।

निवारक उपाय

हाथ व नाखून को साफ रखें । नाखून बढने न दें । हाथो को अच्छी एन्टीसेप्टिक साबुन से धो लें । सक्रमित व्यक्ति के बिस्तर व रोगी द्वारा पहने गए जांगिए आदि गर्म पानी से धो डालें। सक्रमित बच्चे को अलग सुलाए । सक्रमण नियन्त्रण के लिये परिवार के सभी सदस्यो का उपचार किया जाये ।

**

रक्त – संक्रमण सम्बन्धी रोग

(Blood borne diseases)

- मलेरिया
- फाइलेरिया (फील पाव)
- डेंग्यू ज्वर
- पीत ज्वर

सवाहक जन्य रोगो के निवारण के लिए

- लार्वा नियत्रण उपाय अपनाइए ।

- घर की छत पर बनी पानी की टकी को ढक कर रखें तथा प्रत्येक सप्ताह उसे साफ कर दुबारा भरें ।

- लार्वा उत्पत्ति केन्द्रो को नष्ट करें । उन्हे मिट्टी से भर दें या उनमें जले मोबिल आयल अथवा मिट्टी के तेल की बूदे डाल दे ।

- मच्छरो को नष्ट करने के लिए अपने घरो मे डी डी टी का छिडकाव कराएँ । सोने के कमरे मे फिलट छिडकें ।

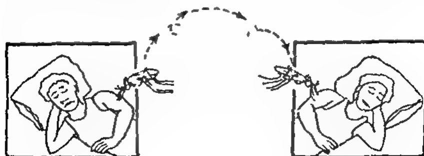
- मच्छर दानी का उपयोग करें या शरीर पर अपवारक (Repellent) क्रीम आदि का उपयोग करें ।

मलेरिया ज्वर

(Malaria fever)

मलेरिया एक प्रकार का विशिष्ट ज्वर है जो व्याप्त चार प्रकार के मानवीय मलेरिया परजीवी द्वारा लाल रक्त कणो पर आक्रमण से उत्पन्न होता है। ये परजीवी विशिष्ट प्रकार के सक्रमित मादा एनाफिलिज मच्छरों के दश द्वारा स्वस्थ व्यक्ति के रक्त मे प्रवेश करते है। मलेरिया परजीवी जैसे ही मनुष्य शरीर मे सक्रमित (Infected) मच्छर द्वारा प्रवेश करते हैं मलेरिया आक्रमण अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। परजीवी के रक्त मे प्रवेश होने से प्रथम लक्षण (Clinical symptoms) प्रकट होने तक के समय को अन्तः विकास काल (Incubation period) कहते हैं।

प्रथम लक्षण के प्रकट होने से एक दो दिन पूर्व रोगी को कमजोरी सिर दर्द, भूख का कम लगना, उदर व्याधि आदि का अनुभव होने लगता है। सर्दी लगकर तेज बुखार चढता है तथा पसीना आने के पश्चात ज्वर का उतरना ही इस रोग के विशेष लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त सिर मे दर्द, मिचली तथा उल्टी/वमन का आना आदि लक्षण हैं। रोगी के शरीर मे रक्त की कमी होने लगती है तथा तिल्ली के आकार मे वृद्धि होती



मलेरिया रोगी के शरीर से मच्छर सक्रमित रक्त लेते हुए।

स्वस्थ व्यक्ति को सक्रमित मच्छर दश करते हुए।

है । इस प्रकार के लक्षण प्राय पी वाइवेक्स के रोगी मे ज्यादा दिखाई देते हैं ।

मलेरिया ज्वर की चार स्पष्ट अवस्थायें निम्न प्रकार से है

(1) शीतावस्था (Cold Stage)

इस अवस्था मे रोगी को अचानक बुखार आता है तथा ठंड व कँपकँपी अनुभव करता है । रोगी की प्रवृत्ति बिस्तर मे सिमटकर सो जाने तथा अपने ऊपर कपडे ओढने की होती है । अधिक ठंड लगने लगती है, यहा तक कि रोगी दात कटकटाने लगता है । रोगी तेज सिर दर्द, उल्टी, मिचली (Nausia), शरीर मे दर्द की शिकायत करता है । यह अवस्था 20 मिनट से एक घंटे तक की होती है ।

(2) उष्मावस्था (Hot Stage)

इस अवस्था मे रोगी को गर्मी लगती है, कपडे हटाकर दूर करता है । इस स्थिति में तेज सिर दर्द निरन्तर रहता है, गला सूखने लगता है, नेत्र तथा चेहरा लाल हो जाते हैं तथा रोगी बडबडाने लगाता है । मिचली तथा उल्टी की शिकायत बनी रहती है । तापक्रम 106° फे० या इससे अधिक हो जाता है । यह अवस्था एक से 6 घंटे तक रहती है ।

(3) प्रस्वेदावस्था (Sweating Stage)

इस अवस्था में तेजी से पसीना आता है और रोगी आराम का अनुभव करने लगता है । दर्द व उल्टी की प्रकृति नही रहती है ज्वर साधारण स्थिति में आ जाता है तथा रोगी आराम से सो जाता है । यह अवस्था एक से छ घंटे की होती है ।

(4) सामान्य अवस्था (Apyrexial Stage)

इस समय रोगी सामान्य अवस्था में ही होता है, ज्वर समाप्त हो जाता है । यह अवस्था परजीवी की जाति पर निर्भर करती है, पी वाइवेक्स मे 36 घंटे, पी फैल्सीपेरम में 12 घंटे तथा पी मलेरियाई में 60 घंटे तक की होती हैं । इसके पश्चात् फिर ऊपर वर्णित तीनो अवस्थाओं की पुनरावृत्ति होती है लेकिन समय पर उपचार कर दिया जाए तो पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है ।

कुप्रभाव

मलेरिया ज्वर के बार बार होने से रोगी कृशकाय (Chachaxia) की अवस्था मे पहुंच जाता है जिससे रोगी के शरीर में खून की कमी (Anaemia), शारीरिक कमजोरी, मस्तिष्क रोग, यकृत-प्लीहा वृद्धि, सामान्य अतिसार आदि हो जाते हैं। कभी-कभी पैरो मे सूजन तथा जलोदर (Ascitis) की अवस्था आ जाती है।

निदान

मलेरिया रोगी का निदान निम्नलिखित विधियो से किया जा सकता है –

(1) रोगी के वैयक्तिक विवरण द्वारा
(2) रोगी के रोग लक्षण द्वारा
(3) मलेरिया परजीवी के लिये रोगी के रक्त परीक्षण द्वारा
(4) सीरोलोजिकल परीक्षण द्वारा

रोगी का पुर्व कथन (Prognosis-परिणाम)

मलेरिया रोगी को यदि समय पर उपचार मिल जाये तो परिणाम बहुत ही अच्छे होते हैं। वाइवेक्स सक्रमण के रोगियो मे मृत्यु कम होती है जबकि फैल्सीपेरम घातक हो सकता है। फैल्सीपेरम सक्रमण मे पुनरावर्तन की प्रकृति कम होती है जबकि वाइवेक्स मे यह प्रवृति प्राय पायी जाती है।

निश्चित निदान के लिये निम्न लिखित परीक्षण करने चाहिये

रक्त परीक्षण— परजीवी की उपस्थिति के लिये
सफेद रक्त कणो की सापेक्ष गणना (T D L C)
सवर्धन (Culture)

उपचार

इस रोग के उपचार को दो भागो में विभक्त किया गया है—

(अ) अनुमानिक एव (व) आमूल उपचार ।

(अ) अनुमानिक उपचार

प्रत्येक ज्वर के रोगी का इस अनुमान के साथ उपचार किया जाता है कि वह रोगी मलेरिया से आक्रान्त हो सकता है, अनुमानिक उपचार कहलाता है।

(व) आमूल उपचार (उपचारात्मक)

इस वर्ग में औषधियो का उपयोग शयनिक लक्षणो को जड से समाप्त करने के लिये किया जाता है तथा मलेरिया ज्वर में यह उपचार रक्त की परीक्षा कर परजीवी की उपस्थिति प्रमाणित होने पर दिया जाना है।

अनुमानिक उपचार

यह उपचार क्लोरोक्विन औषधि देकर किया जाता है तथा ज्वर के प्रत्येक रोगी को यह मानकर दे दिया जाता है कि वह रोगी मलेरिया ज्वर से पीडित हो सकता है। क्लोरोक्विन की मात्रा रोगी को निम्न प्रकार से अधो लिखित मात्रा के अनुसार ही एक वक्त में दी जाती है--

क्र म	आयु	औषधि की मात्रा
1	एक वष से कम	75 मि० ग्रा०
2	1 से 4 वष तक	150 मि० ग्रा०
3	5 से 8 वष तक	300 मि० ग्रा०
4	9 से 14 वष तक	450 मि० ग्रा०
5	15 वष से ऊपर	600 मि० ग्रा०

आमूल उपचार

रोगी का रक्त परीक्षण रक्त पट्टिका बनाकर किया जाता है तथा मलेरिया ज्वर घोषित होने पर परजीवी की जाति के अनुसार रोगी को आमूल उपचार दिया जाता है। विभिन्न जाति के परजीवी के लिए निम्न प्रकार से औषधियो की मात्रा दी जाती है।

पी वाइवेक्स

क्र स	श्रायु	प्राइमाक्विन की मात्रा
1	0–1 वर्ष तक	नही
2	1 से 4 वर्ष तक	2 5 मि० ग्रा०
3	5 से 8 वर्ष तक	5 मि० ग्रा०
4	9 से 14 वर्ष तक	10 मि० ग्रा०
5	14 से ऊपर	15 मि० ग्रा०

मलेरिया ज्वर घोषित होने पर वयस्क व्यक्ति को पाच दिन तक निम्न प्रकार उपचार दिया जाता है। प्रथम दिन 600 मि० ग्रा० क्लोरोक्वीन तथा 15 मि० ग्रा० प्राइमाक्विन दी जाती है । शेष 4 दिन केवल प्राइमाक्विन प्रतिदिन 15 मि० ग्रा० की मात्रा में दी जाती है । अन्य श्रायु के रोगियो को भी इसी प्रकार पाच दिन तक उपचार दिया जाता है जिसमें श्रौषधियो की मात्रा ऊपर वर्णित तालिकाश्रो के अनुसार दी जाती है ।

पी० फैल्सीपेरम

क्र स	श्रायु	डाराप्रिम की मात्रा
1	0–1 वर्ष तक	शून्य
2	1 से 4 वर्ष तक	6 25 मि० ग्रा०
3	5 से 8 वर्ष तक	12 50 मि० ग्रा०
4	9 से 14 वर्ष तक	25 मि० ग्रा०
5	14 वर्ष से ऊपर	50 मि० ग्रा०

पी० फैल्सीपेरम ज्वर मे डाराप्रिम श्रौषधि का उल्लेख किया जाता है। श्राजकल रोगी को फल्सीपेरम ज्वर घोषित होने पर केवल एक दिन क्लोरोक्विन के साथ प्राइमोक्विन की मात्रा तालिका मे दर्शाई श्रायु के अनुसार दी जाती है।

श्रौषधियो का दुष्प्रभाव

साधारण स्थिति मे अनुमोदित खुराक देने से कोई गम्भीर दुष्प्रभाव नही देखे गये लेकिन फिर भी निम्न लिखित मामूली प्रभाव देखे जा सकते हैं।

1 मिचनी का अनुभव होना, उल्टी आना आमाशय मे जलन आदि ।

2 हृदय तथा रक्त सचार सम्बन्धी लक्षण अधिक गम्भीर रूप ले सकते है । सब प्रथम लक्षण मसूडो का नीला पडना तथा धीरे-धीरे होंट व नाखूनो का नीला पडना अत ऐसी अवस्था मे रोगी को तुरन्त पास के चिकित्सालय मे उपचार हतु भेज देना चाहिए तथा औषधियो का देना बन्द कर देना चाहिए ।

उपचार मे औषधिया देते समय निम्न सावधानी बरतनी चाहिए

1 रोगी का कभी भी भूखे पेट औषधिया न दें ।

2 गभवती महिला तथा कमजोर रोगी को औषधिया न दें।

3 रोगी पर दुष्प्रभाव होने पर औषधिया बन्द कर द ।

मलेरिया ज्वर मे अन्य औषधियाँ जो आजकल काम मे लाई जाती हैं वे निम्न प्रकार हैं

1 सल्फोन्स तथा सल्फोनामाइड्स ।

2 मेटाकेल्फिन (सल्फा-मीथो-पायराजीन 500 मि० ग्रा० तथा पायरामिथामिन 25 मि० ग्रा० का मिश्रण) 2 गोलिया एक बार मे ।

3 मैपक्वीविन-कुनैन देने के बाद मफ्लाक्विन की खुराक जिसकी मात्रा 1 5 ग्राम होती है दी जाती है यह अभी भारत मे उपलब्ध नही है । अन्तिम दोनो दवाएँ पी० फैल्सीपेरम के रोगी को उस अवस्था मे दी जाती है जब अन्य औषधियाँ प्रभावहीन रही हो ।

मलेरिया

उन्मूलन कार्यक्रम—एक सक्षिप्त परिचय

मलेरिया नियन्त्रण/उन्मूलन कायक्रम की भूमिका पर सक्षिप्त प्रकाश इन पृष्ठो पर प्रस्तुत किया जा रहा है ।

मलेरिया रोग विश्व के सभी भागो मे जन स्वास्थ्य के लिये एक प्रमुख समस्या बना हुआ है। स्वतन्त्रता के समय भारतवर्ष मे प्रति वर्ष 7 5 करोड व्यक्ति मलेरिया रोग से त्रस्त होते थे तथा 8 लाख व्यक्ति मौत के ग्रास बन जाते थे। इस स्थिति ने देश की सामाजिक व आर्थिक प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था। भारत सरकार ने इस व्यापक एव घातक रोग को नियन्त्रण करने के लिये एक आयोग गठन किया तथा आयोग की राय पर लक्ष्य प्राप्ति हेतु सन् 1953 मे राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम आरम्भ किया। सन् 1958 मे इस कायक्रम को राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम का रूप दिया गया। इसके परिणाम बहुत उत्साहवर्द्धक रहे। सन 1961 मे केवल 49,151 व्यक्ति ही रोगग्रस्त हुए एव मलेरिया से एक भी व्यक्ति मृत्यु का शिकार नही हुआ। लेकिन कुछ समय पश्चात ही, देश फिर मलेरिया की जकड मे आने लगा, 1965 मे मलेरिया से ग्रस्त रोगियो की सख्या 1 लाख हो गई तदुपरान्त रोगियो की सख्या मे वृद्धि होती चली गई एव 1975 मे मलेरिया से 51,56,142 व्यक्ति रोग ग्रस्त हुए और इनमे से 99 व्यक्ति मौत के ग्रास बन गये। इस स्थिति ने भारत सरकार को उक्त व्यूह रचना मे सशोधन करने के लिये बाध्य कर दिया।

भारत सरकार द्वारा गठित इन्डेप्थ इवेल्यूवेशन कमेटी की अनुशसा पर निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु 1 अप्रेल 1977 मे सशोधित योजना प्रारम्भ की गई।

मलेरिया उन्मूलन कायक्रम की सफल क्रियान्विति के लिये कार्यक्रम जिन सिद्धान्तो पर आधारित है उनका ज्ञान होना अति आवश्यक है जैसे मलेरिया रोग का प्रसार कैसे होता है, रोग प्रसरण के लिये कौन-कौन से तत्त्व उत्तरदायी है तथा उन पर कैसे नियन्त्रण किया जा सकता है आदि ऐसे बिन्दु है जिनका ज्ञान यदि हो तो काय सफलता से पूण किया जा सकता है। इनका सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

मलेरिया रोग प्रसरण के लिये 4 तत्त्व उत्तरदायी है – (1) परपोषी (व्यक्ति) (2) परजीवी (3) सवाहक एव (4) पर्यावरण। अत

मलेरिया नियन्त्रण हेतु उक्त चार तत्वो के विषय मे ज्ञान होना आवश्यक है।

(1) परपोषी–यह तत्त्व प्रमुख है व रोग प्रसार मे भी इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। व्यक्ति (परपोषी), परजीवी के शिकार का माध्यम है एव व्यक्ति मे परजीवी अपना अमैथुनिक जीवन चक्र पूर्ण करता है। यदि इस जीवन चक्र के किसी भी स्तर पर व्यवधान उत्पन्न कर दिया जाय तो रोग प्रसार पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

(2) सवाहक–मच्छर सवाहक की भूमिका निभाता है तथा मादा एनाफिलीज मच्छर इसके लिए उत्तरदायी हैं। यह रोग के प्रसार के लिए एक सशक्त माध्यम है। मच्छर मे परजीवी अपना मैथुनिक जीवन चक्र पूरा करता है इसलिए मच्छर के विकास क्रम के किसी भी स्तर पर बाधा उत्पन्न कर दी जाए तो रोग नियन्त्रण मे बहुत सहायता मिल सकती है। यह नियन्त्रण मच्छर की जीवन अवधि के दो स्तरो पर सम्भव है–

(क) अण्डे से मच्छर बनने तक के विभिन्न विकास स्तरो मे व्यवधान डालकर।

(ख) वयस्क होने पर मच्छरो का सहार करके।

(3) परजीवी–परजीवी प्लाजमोडियम वश से सम्बन्धित है तथा अपना विकास व्यक्ति व मच्छर मे करता है। व्यक्ति मे यह अमैथुनिक जीवन चक्र पूरा करता है जबकि मच्छर मे मैथुनिक चक्र पूरा करता है।

कार्यक्रम के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सवाहक व परजीवी के जीवन चक्र के विषय मे कुछ बातो का ज्ञान होना आवश्यक है। इनमे से विशेष निम्न प्रकार हैं–अण्डे से वयस्क मच्छर बनने मे सामान्यतया 7 से 13 दिन लगते हैं। विकास की विभिन्न स्थितियो के अनुसार यह अवधि निम्न प्रकार विभक्ति की गई है–

अण्डा—→ → → → → लार्वा—→ → → → → प्यूपा—→ → → → → वयस्क

1–3 दिन 5–7 दिन 1–3 दिन

(1) इस चक्र से यह स्पष्ट है कि लार्वा अपनी अग्रिम स्थिति प्यूपा तक आने के लिये अधिकतम समय लेता है अत लार्वा के इस अग्रिम

विकास को नियन्त्रित करने के लिये अपनाया गया उपाय अच्छा परिणाम देगा। इन उपायो को "लार्वा नियन्त्रण उपाय" कहते हैं।

(3) वयस्क मच्छर की जीवन अवधि 8–34 दिन की होती है। औसतन मादा मच्छर की जीवन अवधि 14 दिन होती है जबकि नर मच्छर की जीवन अवधि 1 से 8 दिन होती है। इस प्रकार मादा मच्छर की अपेक्षा नर मच्छर की जीवन अवधि कम होती है।

मादा मच्छर प्राणियो के खून की प्यासी होती है। हर दूसरे तीसरे दिन अपने अण्डो के विकास के लिए उसे खून की आवश्यकता होती है एव स्वय का पोषण भी वह खून पीकर ही करती है, जबकि नर मच्छर बहुत सात्विक होता है व वनस्पतियो के रस, जल आदि पर ही जीवन निर्वाह करता है। मादा मच्छर सक्रमित व्यक्ति का खून पीने के 10 से 12 दिनो के बाद सक्रामक बन जाती हैं व बहुत से प्राणियो को मलेरिया मे ग्रस्त कर सकती है इसलिए यदि हमे रोग प्रसार को नियन्त्रित करना है, तो मादा मच्छर की जीवन अवधि का ह्रास करना होगा। इस उपायो को "सवाहक नियन्त्रण उपाय" कहते है तथा इन उपायो मे कीट-नाशक औषधियो का उपयोग होता है। कीटनाशक औषधियाँ वयस्क मच्छरो के लिए घातक होती है। उपरोक्त सभी तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि मलेरिया नियन्त्रण व उन्मूलन कार्यक्रम निम्न तथ्यो पर आश्रित है।

(1) मलेरिया निरोधक औषधियो द्वारा परजीवी के विकास पर नियन्त्रण–इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ज्वर से पीडित सभी व्यक्तियो को अनुमानिक उपचार दिया जाता है तथा रक्त परीक्षण कर घोषित सभी रोगियो को आमूल उपचार दिया जाता है।

(2) लार्वा नियन्त्रण उपाय इसके अन्तर्गत रसायनो के उपयोग मे इनकी उत्पत्ति व वृद्धि को रोका जाना एव इनके प्रजनन स्थानो का उन्मूलन किया जाना आदि उपाय आते है।

(3) सवाहक नियन्त्रण उपाय इसके अन्तर्गत वयस्क मच्छरो

का घातक औषधियो के छिडकाव द्वारा सहार किये जाने वाले उपाय आते है ।

मलेरिया की रोकथाम के लिए

आपको करना है

1 मच्छर के उत्पत्ति स्थलो को नष्ट कर दें; गढ्ढो को बुरवा दें, गढ्ढा म पानी भरा हो तो खाली करवा दें ।
2 एकत्र पानी मे यदि मच्छर के लार्वा है तो पानी पर जले हुए मोबिल आॅयल या मिट्टी के तेल की कुछ बून्दें डाल दें, लार्वा मर जायेंगे।
3 घर मे बनी पानी की टकी, कुन्ड आदि को ढक कर रखे ।
4 घर मे बनी पानी की टकी हर सप्ताह साफ करें या उसमे परिस ग्रीन की गोलिया हर सप्ताह डालें ।
5 कूलर आदि का पानी हर सप्ताह बदल दे ।
6 सोते समय मच्छर-दानी का उपयोग करें ।
7 दरवाजे तथा खिडकियो मे जालो के दरवाज लगायें।
8 सोने क कमरो मे सोने से पूव फ्लिट आदि छिडकें ।
9 घरो मे डी डी टी/जी एच सी आदि कीट-नाशक औषधियो का छिडकाव कराते समय दीवाल पर टगे कपडे केलैन्डर, फोटो आदि उतार दें । दरवाजे व खिडकी आदि के अन्दर के भाग पर छिडकाव करायें ।
10 बुखार होने पर खून की जाच करायें ।
11- यदि खून की जाच करने पर आपको मलेरिया घोषित हो तो चिकित्सक या विभागीय कार्यकर्ता से पूरा आमूल उपचार लें।
12 आपके बगीचे मे बने पानी के कुण्ड मे ग पी, गम्बूजिया मछली डालिये जो मच्छर के लार्वा खा जाती है तथा देखने मे आकर्षक होती हैं।
13 जो कूए काम मे नही आ रहे है उ हे स्थाई रूप से ढकवा दें ।

आपको नहीं करना है

1 घर के आस-पास पानी इकट्ठा न होने दें।

2 घर मे लगे नल से पानी को टपकने न दें।
3. घर मे बनी पानी की टंकी को खुली न छोड़ें।
4 टूट पीपे, फूटी बोतल, टायर के टुकड़े आदि खुले मे न पटकें तथा उनमे पानी इकट्ठा न होने दें।
5 रसोई आदि के पीछे पानी इकट्ठा न होने दें।
6 नाले, नालियो मे पानी एकत्र न होने दें।
7 सडक के आस-पास या अन्यत्र बने गड्ढो मे पानी एकत्र न होने दें।

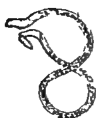
फील पांव

(Filariasis)

यह रोग धागे के समान कीट (परजीवी) से उत्पन्न होता है। रोग ग्रसित व्यक्ति मे कई प्रकार के तीव्र तथा जीण रोग के लक्षण दिखाई दे सकते हैं जिनमे से मुख्य लक्षण हैं — लसिका वाहिनी एव ग्रन्थियो मे सूजन, ज्वर, बाजू, पैर तथा प्रजनन अगो का कुरूप तथा मोटा होना। यद्यपि यह रोग घातक नही है लेकिन प्रभावित अग को कुरूप तथा निष्क्रीय बना देता है। इसमे प्राय लसिका वाहिनी एव ग्रन्थी, उपचर्मीय तन्तु (Subcutaneous tissues) आदि प्रभावित होते है। प्राय लसिका तन्त्र (Lymphatic system) प्रभावित होता है।

रोगोत्पादक कारक तत्व

यह रोग प्राय वुचरेरिया वेंक्रोफ्टी (Wuchraria vancrofti) एव ब्रुगिया मलाय (Brugia Malay) परजीवीयो द्वारा होता है। वेन्क्रोफ्टी के सचार के लिए क्युलेक्स फटीगन्स तथा मलाय के लिए मान्सोनायड मच्छर काय करते हैं। सक्रमित व्यक्ति के लासिका तन्त्र मे परिपक्व परजीवी आश्रय लेते हैं। मादा परजीवी लगभग 50–100 मि मी तथा नर लग भग 40 मि मी लम्बा होता है। मादा परजीवी एक दिन मे लगभग 50,000 माइक्रोफाइले-रिया को जन्म देती है।






वुचरेरिया वेन्क्रोफ्टी   ब्रुगिया मलाए

यह रोग किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है। भारत मे लगभग 14 लाख व्यक्ति इस रोग से ग्रसित है तथा 18 लाख व्यक्तियो के शरीर से माइक्रोफाइलेरिया पाए गए। उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, उडिसा, तामिल नाडू, केरल, गुजरात में यह रोग बहुत अधिक होता है।

परजीवी का जीवन चक्र

मादा परजीवी एक दिन मे लगभग 50,000 माइक्रोफालेरिया को जन्म देती है। यह सूक्ष्म जीवाणु संक्रमित व्यक्ति के रक्त या उपचर्मीय तन्तुओ मे प्रवाह हो जाते है जहाँ यह कुछ सप्ताह या माह तक जीवित रहते है। जब कोई मादा मच्छर संक्रमित व्यक्ति को काटती है तो रक्त के साथ इन सूक्ष्म जीवाणुओ को भी अपने शरीर मे ले लेती है। मच्छर के शरीर म प्रवेश के 1–2 घटे वाद इन सूक्ष्म जीवाणुओ की ऊपरी परत मे से फाइलेरिफोर्म (Filariform) लार्वा बाहर निकलते हैं। 6–12 घटे मे लार्वा मच्छर की आमाशय परत को भेद कर अन्दर प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात मच्छर की वक्ष मास पेशीयो मे प्रवेश कर अपना विकास एव वृद्धि करते

है। इस अवस्था मे इनका आकार छोटा व मोटा होता है तथा यह लार्वा की प्रथम अवस्था कहलाती है। द्वितीय अवस्था मे लार्वा की लम्बाई मे वृद्धि होती है तथा इसका आकार लम्बा व पतला हो जाता है। अब यह गतिशील एव क्रियाशील अवस्था मे होते हैं। यह मच्छर की शुण्डी (Proboscis) की ओर अग्रसर होते हैं तथा इस अवस्था में मच्छर सक्रमित होता है।

परजीवी का जीवन चक्र


1


4


2


3

1 प्रौढ नर एव मादा परजीवी

2 सक्रमित व्यक्ति से रक्त के साथ माइक्रोफाइलेरिया लेते हुए मादा मच्छर

3 मादा मच्छर के शरीर मे विकास एव वृद्धि

4 व्यक्ति के शरीर में सक्रमित मादा मच्छर दश करते हुए

जब सक्रमित मादा मच्छर स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो उस व्यक्ति के रक्त में लार्वा प्रवाह कर उसे सक्रमित करता है। लार्वा व्यक्ति के लसिका तत्र या उपचर्मीय ततुओ मे अपना विकास कर नर व मादा परजीवी मे परिवर्तित हो जाते है। इस प्रकार परजीवी का जीवन चक्र व्यक्ति एव मच्छर दोनो में पूर्ण होता है।

संक्रमित व्यक्ति के रक्त मे माइक्रोफाइलेरिया सायंकाल 9 बजे से प्रात काल 2 बजे तक सर्वाधिक सख्या मे मिलते है। अत इसी अवधि मे परीक्षण के लिए रक्त लिया जाना चाहिए।

अन्तर्विकास काल – 12–18 माह या 8–12 माह

रोग लक्षण

रोग लक्षण सक्रमण की तीव्रता तथा परजीवी की किस्म पर निर्भर करते हैं। लेकिन सामान्य रूप मे सक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था मे व्यक्ति को ज्वर, सर्दी लगना, पसीना आना आदि लक्षण अनुभव होते है। तत्पश्चात् सिर दर्द, मिचली आना, कै, मांस पेशीयो मे दर्द आदि लक्षण अनुभव होते है। लसिका वाहिनियो पर प्रभावित अग के अनुसार स्थानीय लक्षण अनुभव होते हैं। प्रभावित अग को स्पर्श करने से दर्द होता है, त्वचा लाल तथा सूजी हुई होती है प्रभावित अग के अनुसार लक्षणो की तालिका निम्न प्रकार है—

क्र स	प्रभावित अग	लक्षण एव अवस्था
1	उदर की लसिका वाहिनिया	उदर मे तीव्र दर्द
2	शुक्राणुनलिका तथा शुक्राणु ग्रन्थी	ऑर्काइटिस, एपिडिडी माइटिस आदि
3	पैर की लसिका वाहिनियाँ वाजू की तुलना में अधिक प्रभावित होती है	पैर मे दर्द तथा स्पर्श करने पर तीव्र वेदना अनुभव होना। प्रभावित क्षेत्र की त्वचा लाल तथा सूज जाती है।
4	इग्वायनल (Inguinal), फिमोरल (Femoral), लसिका ग्रन्थियाँ	ग्रन्थिया सूज जाती हैं इनमे तीव्र दर्द होता है तथा उनमें व्रण होने पर स्राव होने लगता है। तथा नासूर बन जाता है।

कुछ ही दिनो में तीव्र लक्षणो में कमी आती है। बार बार सक्रमण होने से लसिका वाहिनिया अवरुद्ध हो जाती है। फलस्वरूप अग में सूजन,

(Ascites), हाइड्रोसील, जोडो व फेफडा मे इफ्यूजन (Effusion) आदि अवस्थाए उत्पन्न हो जाती हैं । लसिका वाहिनिया धीरे-धीरे मोटी हो जाती है ।

उपचार

डाइ-इथाइलकार्बामाजीन (हेट्रा-जान) बहुत ही प्रभावकारी औषधि है । इसके सेवन से रक्त मे से माइक्रोफाइलेरिया बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं । साथ ही यह औषधि परिपक्व परजीवीयो को भी नष्ट कर उनकी प्रजनन/उत्पादन की शक्ति क्षीण करती है ।

हेट्राजॉन मात्रा – 2 मि० ग्रा० प्र० कि० ग्रा० शारीरिक वजन की दर से दिन मे तीन बार 3–4 सप्ताह तक । साथ मे एस्प्रिन तथा नावलजिन औषधिया दी जानी चाहिए ।

निवारक उपाय

जन समुदाय मे सक्रमण वाहक व्यक्तियो (Carters) का पता लगा कर उनका औषधियो से उपचार किया जाए । W H O के अनुसार बेंक्रोफ्टी परजीवी से सक्रमित व्यक्ति को हेट्राजान औषधि की कुल मात्रा 72 मि० ग्रा० प्रति कि० ग्रा० शारीरिक वजन की दर से तथा मलाय परजीवी से सक्रमित व्यक्ति को 30–40 मि ग्रा प्रति कि ग्रा शारीरिक वजन की दर से दी जाए । एन्डेमिक क्षेत्रो मे यह मात्रा 2 वर्ष के अन्तराल पर पुन दी जा सकती है जिससे कि व्यक्ति को पुन सक्रमण से बचाया जा सके

अन्य औषधि लेविसेमोल (Levisamole) हेट्राजॉन की साथ दी जा सकती है । यह विधि बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हुई है । प्रथम दिन लेविसेमोल की एक मात्रा 2 5 मि ग्रा तथा दूसरे दिन हेट्राजॉन 6 मि ग्रा प्रति कि ग्रा की दर से तत्पश्चात साप्ताहिक मात्रा 7 सप्ताह तक दी जा सकती है ।

मच्छर तथा मच्छरो के लार्वा को नष्ट किया जाए । विभिन्न उपाय मलेरिया के अध्याय मे दिए गए है ।

डेंग्यू ज्वर

(Dengue fever)

यह एक सक्रामक रोग है जो अर्गोवायरस समूह के चार प्रकार के वीषाणुओ द्वारा होता है तथा इसका प्रसार एडिस मच्छर (Aedes mosquit) द्वारा होता है विशेष रूप से एडिस इजिप्शाई (Aedes aegypti) द्वारा । यह ज्वर महामारी का रूप भी ले सकता है । इसे हड्डी तोड (Break bone) ज्वर भी कहते है । प्राय यह रोग वर्षा रितु मे होता है जबकि एडिस मच्छरो की उत्पत्ति अधिक होती है । गत कुछ वर्षों से भारत मे भी यह ज्वर प्रति वर्ष महामारी के रूप में होने लगा है । मास पेशियो व जोडो में दर्द इस के विशेष लक्षण है । जोडो में दर्द के कारण रोगी चलने में कठिनाई अनुभव करता है ।

एडिस मच्छर जब डेंग्यू ज्वर से पीडित व्यक्ति को बीमारी के प्रथम तीन दिनो में करता है तो रोगी के शरीर से विषाणु ले लेता है। 8-14 दिनो यह मच्छर सक्रमित हो जाता है तथा स्वस्थ मनुष्य को सक्रमित कर सकता है । मच्छर के एक बार सक्रमित होने पर वह शेष जीवन में भी सक्रमित बना रहता है ।

अन्तर्विकास काल प्राय 2-15 दिन

रोग लक्षण

लाक्षणिक डेंग्यू ज्वर तीन प्रकार का होता है-डेंग्यू, रक्तस्त्रावित डेंग्यू तथा चिकनगुनिया ज्वर (Chikungunia fever)

लाक्षणिक डेंग्यू ज्वर (Typical Dengue fever)

ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में जुकाम तथा आख का दुखना विशेष लक्षण हैं । बाद में रोगी सिर दद, आख में, पीठ में दद (विशेष रूप से नीचे के भाग में) पैर तथा जोडो में दद का अनुभव करता है । भूख का कम लगना, कमजोरी, स्वाद का बिगडना, नाक से खून आना

आदि लक्षण भी अनुभव होते है । शरीर पर लाल दाने दिखाई देते है विशेप रुप से सीने पर तथा भुजा के अन्दर की ओर, बगल में यह दाने जल्दी ही लुप्त हो जाते हैं ।

रोगी 8–10 दिन मे स्वस्थ हो जाता है ।

उपचार

लक्षणो के अनुसार रोगी का उपचार किया जा सकता है । एस्प्रीन, नावलजीन पेरासिटामोल आदि औषधिया दी जाती है । साथ में विटामिन्स भी दें ।

निवारक उपाय

मच्छर के उत्पति केन्द्रो तथा मच्छरो को नष्ट किया जाए । मच्छरो के लार्वा को नष्ट करने के लिए अबेट (Abate) मिट्टी का तेल, पेरिस ग्रीन आदि रसायनो का उपयोग किया जा सकता है । मच्छरो को नष्ट करने के लिए अल्ट्रा लो वॉल्यूम (U L V) मात्रा में मेलाथियोन या सुमिथियोन (Sumithion) का 250 मि ली प्रति हेक्टयर की दर से छिडकाव किया जाए । छिडकाव के बाद पानी व वायु में मिश्रित इन रसायनो के कण मच्छरो को नष्ट कर देते है । मच्छर द्वारा व्यक्ति को काटने से बचाएँ इसके लिए मच्छरदानी का उपयोग करें । मच्छरो को नष्ट करने के लिए डी डी टी या फ्लिट का उपयोग करें ।

पीत - ज्वर

(Yellow fever)

यह एक विषाणुजन्य तीव्र सक्रामक रोग है जो फ्लेविवाइरस फिब्रिकस (Flavivirres fibiricus) नामक कारक तत्त्व से उत्पन्न होता है तथा विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे एडिस मादा मच्छर द्वारा पहुँचते हैं । यह रोग अल्पावधि तक ही व्यक्ति को पीडित रखता है । रोग लक्षण साधारण रुप से गम्भीर रुप तक हो सकते हैं । रोग घातक भी हो सकता है । एक

बार रोग होने पर व्यक्ति में प्रतिकारिता उत्पन्न हो जाती है जो शेष जीवन तक बनी रहती है।

रोग के मुख्य लक्षण हैं – ज्वर होना, यकृत तथा गुर्दे का प्रभावित होना। फलस्वरूप पीलिया, पेशाब में एल्ब्युमिन आना, नकसीर, खून की कै तथा दस्त आना आदि लक्षण दिखाई देने लगते है। एशिया में यह रोग बहुत कम होता है। प्राय अफ्रीका, दक्षिण अमरीका आदि देशो में अधिक होता है।

रोग प्रसार

रोग दो प्रकार का होता है जगली तथा शहरी ग्रामीण क्षेत्रों में। प्रथम में वाइरस बन्दर के शरीर में अपना सचयागार बनाते हैं तथा द्वितीय में मनुष्य को। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में मनुष्य को रोग मच्छर के माध्यम से फैलता है।

एडिस मादा मच्छर सक्रमित व्यक्ति से विषाणु अपने शरीर में ले लेते है तथा वह 10–15 दिन में सक्रमित हो जाते हैं। जब यह सक्रमित मच्छर स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो विषाणु व्यक्ति के शरीर में रक्त माध्यम से प्रवेश कर उसे पीड़ित करते हैं। मच्छर एक बार सक्रमित होने पर शेष जीवन के लिये सक्रमित बना रहता है।

विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में सक्रमित पदार्थ के सीधे सम्पर्क से भी प्रवेश कर सकते हैं जैसे त्वचा से या चिकित्सालय तथा प्रयोगशाला में कार्य करते हुए।

अन्तर्विकास काल प्राय 3–10 दिन

रोग लक्षण

सामान्य रोग अवस्था में व्यक्ति अचानक ही ज्वर सिर दर्द का अनुभव करता हैं। इसके अतिरिक्त जी मिचलना, नकसीर (नाक से रक्त आना) आदि के लक्षण है। इस अवस्था में रोगी तीन दिन में स्वस्थ हो जाता हैं।

रोग की अग्रिम अवस्था में व्यक्ति को अचानक सिरदद होता है तथा ज्वर 104° फे० तक हो जाता है । तत्पश्चात रोगी गर्दन, पीठ तथा पैरो मे दर्द अनुभव करता है । जी मिचलना, कै का आना, आख का लाल होना आदि अन्य लक्षण दिखाई देने लगते है । तीन दिन बाद यह लक्षण मन्द हो जाते हैं । ज्वर बहुत कम हो जाता है तथा दूसरे लक्षण खून की उल्टी व दस्त, पेशाब का न आना आदि प्रकट होने लगते हैं ।

रोगी चित्तविभ्रम (Delirium) अवस्था मे पहुँच जाता है । रोग की गम्भीर अवस्था मे ज्वर फिर हो जाता है । पीलिया हो जाता है, नकसीर, खून की उल्टी व दस्त आदि लक्षण दिखाई देने लगते है । महिलाओ मे गर्भाशय से रक्त आने लगता है ।

रोग का निदान

1- रक्त परीक्षण – विषाणु के लिये बीमारी के प्रथम तीन दिनो मे ।
2- मूत्र परीक्षण – रक्त तथा एल्ब्युमिन के लिये ।
3- लिवर बायोप्सी

रोग का निवारण

एडिस मच्छरो के उत्पत्ति केन्द्रो को नष्ट किया जाये । मच्छर तथा उसके लार्वा को कीट नाशक औषधियो से नष्ट किया जाय । मेलाथियोन कीट नाशक औषधि तथा अबेट लार्वा नाशक रसायनो का उपयोग किया जाय । पर्यावरणी स्वच्छता एव स्वास्थ्य शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाए ।

रोग निरोधक टीके लगवाये जाये । 17 डी (17 D) वेक्सीन बहुत ही प्रभावकारी है । दूसरी वेक्सीन फ्रेंच न्यूरोट्रोकि वेक्सीन (French neurotic vaccine) भी उपयोग मे लाई जा सकती है ।

भारत मे भी यह रोग व्यक्तियो को प्रभावित कर सकता है । भारत मे पीत ज्वर नही है लेकिन यहा की परिस्थितिया पीत ज्वर को

फलने में सहायक है जैसे एडिस मच्छर (संवाहक) अधिक मात्रा में है, मौसम अनुकूल है, व्यक्ति संक्रमण को आसानी से ग्रहण कर सकता है। बन्दर बहुत अधिक संख्या में उतनी भारत में उपलब्ध है। लेकिन पीत ज्वर का विषाणु नहीं होने से यह ज्वर अभी भारत में नहीं है, यदि विषाणु संक्रमित व्यक्ति या मच्छर के माध्यम से भारत में प्रवेश कर जाये तो पीत ज्वर भारत में फैल जाती है।

**

सम्पर्क संक्रमण सम्बन्धी रोग

(Surface Infections)

- कुष्ठ रोग
- टिटनस
- रेबीज
- ट्रेकोमा
- सुजाक
- उपदंश

५. उचित उपचार कराने से रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है।

६. ... संक्रमित रोगी जो उपचार नहीं कराते रोग के प्रसार में ... होते हैं तथा संक्रमण के खुले स्त्रोत होते हैं।

७. केवल २०% ... रोगी संक्रमित होते हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को प्रभावित कर सकते हैं।

८. ... व्यक्ति के ... मात्र छू जाने से या मामूली सम्पर्क में आने से स्वस्थ व्यक्ति प्रभावित नहीं होता। रोगी के लगातार बार-बार सम्पर्क में आने से ही स्वस्थ व्यक्ति रोग से ग्रसित हो सकता है।

कुष्ठ रोग से ग्रसित व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार न करें —

यह सत्य नहीं है —

(१) कुष्ठ रोग का उपचार नहीं हो सकता
(२) कुष्ठ रोग कुछ ही परिवारों में होता ... सम्पर्क में आने से फैलता है।
(३) कुष्ठ रोग के सभी रोगी संक्रमण फैलाते
(४) कुष्ठ रोग से ग्र... के बच्चे ...
(५) कुष्ठ रोग पूर्व ज...

कुष्ठ रोग
(LEPROSY)

कुष्ठ रोग एक सक्रामक रोग है जो "माइकोबैक्टीरियम लेप्री" नामक रोगाणु द्वारा फैलता है। इस रोग मे व्यक्ति की त्वचा, श्लेष्म कला, श्वास नलिका का ऊपरी भाग तथा परोसरीय नाडी विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। यह रोग लम्बे समय तक प्रसुप्त रूप मे रह कर अचानक प्रकट होता हैं। फिर बढता चला जाता है। रोग का निदान बहुत सुगमता से हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था मे रोग का उपचार सम्भव है तथा रोगी पूर्णरूप से स्वस्थ हो सकता है एव किसी प्रकार की शारीरिक विकृति नही होती।

यह रोग दो रूप मे होता है- असक्रमित तथा सक्रमित

कुष्ठ रोग से पीडित प्रत्येक व्यक्ति (रोगी) सक्रमण नही फैलाता है। कुष्ठ रोग से ग्रसित सक्रमित व्यक्ति रोग प्रसार मे सहायक होते हैं। केवल 20% रोगी ही सक्रमित होते हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है। केवल मात्र सक्रमित व्यक्ति से छू जाने या मामूली सम्पर्क मे आने से स्वस्थ व्यक्ति प्रभावित नही होता। लेकिन रोग से ग्रसित सक्रमित व्यक्ति के बार बार लम्बें समय तक सम्पर्क मे आने से एक स्वस्थ व्यक्ति रोग का शिकार हो सकता है।

रोग प्रसार माध्यम

1 सम्पर्क सक्रमण

यदि एक स्वस्थ एव सक्रमण को आसानी से ग्रहण करने वाला (सुग्राही) व्यक्ति सक्रमित व्यक्ति के बार बार लम्बी अवधि तक सम्पर्क में

यह सत्य है —

- कुष्ठ रोग साध्य है ।
- प्रारम्भिक अवस्था में उपचार कराने से रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो सकता है ।
- रोग से ग्रसित संक्रमित रोगी जो उपचार नहीं कराते रोग के प्रसार में सहायक होते हैं तथा संक्रमण के खुले स्त्रोत होते हैं ।
- केवल 20% कुष्ठ रोगी संक्रमित होते हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है ।
- संक्रमित व्यक्ति के केवल मात्र छू जाने से या मामूली सम्पर्क में आने से स्वस्थ व्यक्ति प्रभावित नहीं होता । रोगी के लगातार बार-बार सम्पर्क में आने से ही स्वस्थ व्यक्ति रोग से ग्रसित हो सकता है ।

कुष्ठ रोग से ग्रसित व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार न करें —

यह सत्य नहीं है —

- कुष्ठ रोग का उपचार नहीं हो सकता ।
- कुष्ठ रोग कुछ ही परिवारों में होता है तथा मात्र रोगी के मामूली सम्पर्क में आने से फैलता है ।
- कुष्ठ रोग के सभी रोगी संक्रमण फैलाते है ।
- कुष्ठ रोग से ग्रसित परिवार के बच्चे कुष्ठ रोग से प्रभावित होते हैं ।
- कुष्ठ रोग पूर्व जन्म के पापों का या कुकर्मों का फल है ।

कुष्ठ रोग

(LEPROSY)

कुष्ठ रोग एक सक्रामक रोग है जो "माइक्रोबेक्टीरियम लेप्री" नामक रोगाणु द्वारा फैलता है। इस रोग मे व्यक्ति की त्वचा, श्लेष्म कला, श्वास नलिका का ऊपरी भाग तथा परोसरीय नाडी विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। यह रोग लम्बे समय तक प्रसुप्त रूप मे रह कर अचानक प्रकट होता हैं। फिर बढता चला जाता है। रोग का निदान बहुत सुगमता से हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था मे रोग का उपचार सम्भव है तथा रोगी पुर्णरूप से स्वस्थ हो सकता है एव किसी प्रकार की शारीरिक विकृति नही होती।

यह रोग दो रूप मे होता है- असक्रमित तथा सक्रमित

कुष्ठ रोग से पीडित प्रत्येक व्यक्ति (रोगी) सक्रमण नही फैलाता है। कुष्ठ रोग से ग्रसित सक्रमित व्यक्ति रोग प्रसार मे सहायक होते हैं। केवल 20% रोगी ही सक्रमित होते हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को प्रभावित कर सकते है। केवल मात्र सक्रमित व्यक्ति से छू जाने या मामूली सम्पर्क मे आने से स्वस्थ व्यक्ति प्रभावित नही होता। लेकिन रोग से ग्रसित सक्रमित व्यक्ति के बार बार लम्बे समय तक सम्पर्क मे आने से एक स्वस्थ व्यक्ति रोग का शिकार हो सकता है।

रोग प्रसार माध्यम

1 सम्पर्क सक्रमण

यदि एक स्वस्थ एव सक्रमण को आसानी से ग्रहण करने वाला (सुग्राही) व्यक्ति सक्रमित व्यक्ति के बार बार लम्बी अवधि तक सम्पर्क में

भाता है तो उसे यह रोग हो सकता है। ऐसी अवस्था में त्वचा से त्वचा का सम्पर्क आवश्यक नहीं है।

2 व्रण प्रसारण द्वारा संक्रमण

रोग के जीवाणु गले, मुख व श्वांस नलिका की श्लेष्मिक कला तथा नाक के स्राव में रहते हैं जो छींकते, खांसते, व बोलते समय बाहर आकर वायु में मिल जाते हैं तथा ये संक्रमित व्रण संक्रमण फैलाते हैं श्वांस नलिका ही रोग प्रसार का प्रमुख माध्यम है।

3 रोग प्रसार के अन्य माध्यम

कुष्ठ रोग से ग्रसित माताओं द्वारा शिशुओं को स्तनपान कराते समय जीवाणु बच्चे के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं लेकिन दूसरा कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यदि ग्रसित माता को डेप्सोन दी जाये तो शिशु को इस प्रकार के संक्रमण से बचाया जा सकता है साथ ही दूध के माध्यम से औषधि की कुछ मात्रा भी शिशु के शरीर में जाती है। दूषित पदार्थ व मच्छर आदि भी इस रोग पहुंचने के प्रसार में सहायक हो सकते हैं।

अन्तर्विकास - काल— सही ज्ञात नहीं है 30 40 वर्ष हो सकता है प्राय 2–5 वर्ष होता है।

संक्रमण के मुख्य उद्गम स्रोत

प्रत्येक कुष्ठ रोगी संक्रमण नहीं फैलाता है। लेकिन जिन रोगियों के नासिक स्राव व्रण आदि में रोग के जीवाणु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं वे रोगी संक्रमण के स्रोत होते हैं। इन रोगियों के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को संक्रमण होने की सम्भावना होती है। रोग के जीवाणु गले के माध्यम से खांसते समय, बोलते समय या फिर छींकते समय स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुँचते हैं। जिन रोगियों में जीवाणु नहीं मिलते उन्हें असंक्रमित रोगी कहते हैं।

व्यक्ति के शरीर में जीवाणु प्रविष्टी के बाद 4 5 वर्ष बाद यह रोग त्वचा पर प्रकट होता है अतः इस रोग का परिपक्व काल बहुत दीर्घ होता है। कई रोगियों में तो यह लक्षण 20 25 वर्ष बाद भी प्रकट होता है।

रोग सचार

रोगी के नाक, गले व त्वचा के व्रण जिनमे श्राव हो रहा है तथा रोगाणु विद्यमान हो, रोग सचार के मुख्य व खुले श्रोत है। इनके सम्पक मे आने वाले स्वस्थ व्यक्ति को यह रोग हो सकता है। साधारणतया नाडियो की विकृति से बने व्रण मे कुष्ठ रोग के जीवाणु नही होते है। स्तनपान कराती मातायें व रोगी के मुख मे आती लार सक्रमण के मुख्य श्रोत हैं।

कुष्ठ रोग के मुख्य लक्षण

1- त्वचा पर हल्के रग के लाल व पीले बदरग धब्बे दिखाई देना। यह धब्बे हाथ, पैर, चेहरे, पीठ व शरीर के अन्य भागो की त्वचा पर दिखाई दे सकते हैं।

2- धब्बों म सुन्नता पूर्ण या आशिक रूप से विद्यमान हो सकती है।

3- त्वचा व नाडियो का मोटा या स्थूल होना। परीसरीय नाडिया विशेष रूप से प्रभावित होती हैं।

4- त्वचा व नाक के श्राव मे अम्लसह जीवाणुओ का होना।

5- त्वचा चमकीली व बाल रहित दिखाई देती है तथा नेत्रो की भौह बाल रहित हो जाती है।

6- प्रभावित भाग आशिक व पूर्ण रूप से सुन्न व सवेदन हीन हो जाता है।

7- शरीर पर चीटो के रेंगने जैसी अनुभूति होती है।

विभिन्न प्रभावित अगो के अनुसार लक्षणो का विवरण

1- त्वचा मे परिवर्तन

(क) प्रारम्भिक अवस्था मे जब त्वचा पर किसी प्रकार के दद व खुजली का अनुभव नही होता है उस समय रोगी में निम्न लक्षण पाये जाते है-

- त्वचा पर दोष मुक्त वर्ण या लाल पीले रग का बदरग धब्बा या धब्बे दिखाई देते हैं। लाल रग विस्तृत भाग पर भी हो सकता है।
- यह धब्बे आशिक या पूर्ण रूप से चेतना शून्य (सवेदनहीन) या सुन्न, बाल रहित व सूखे होते हैं।

- विस्तृत लालिमा की अवस्था मे त्वचा ललाई लिये हुए नरम व चमकीली होती है, त्वचा मलमल या मोम के समान कोमल अनुभव होती है व तांबे के रंग जैसी दिखाई देती है।
- कान के निचले भाग, चेहरे व पैर पर एवं हाथों के अग्र भागों पर छोटी ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।
- कान के निचले भाग मोटे व दीर्घ हो जाते हैं।
- नेत्रों की भौंह बाल रहित व पतली दिखाई देने लगती है।

(ख) कष्टदायक अवस्था– यह रोगी की अग्रिम अवस्था है जिसमें चेहरा, पांव व हाथ के अग्रभागों की ग्रंथियाँ, नाड़िया व संधि कष्टप्रद हो जाती है। रोगी को ज्वर का अनुभव होता है त्वचा ललाई लिये हुए चिकनी, नरम व चमकीली दिखाई देने लगती है।

(ग) संक्रमित हाथ पर सूजन आ जाती है व दर्द बढ़ जाता है विशेष रूप से अगुलियों के आधार भाग पर अधिक सूजन आ जाती है।

2– नाड़िया मे परिवर्तन

शरीर की संवेदक व प्रेरक दोनों ही प्रकार की नाड़िया प्रभावित होती है।

संवेदक नाड़ियों मे परिवर्तन

- नाड़ियों मे स्फुरण जैसी अनुभूती होती है। ऐसा अनुभव होता है जैसे शरीर पर चींटी रेंगती चल रही है।
- पांव तथा हाथों मे कष्ट रहित व्रण व छाले बन जाते हैं।
- शरीर की बड़ी सन्धिया के पिछले भाग से जाने वाली नाड़िया कष्टदायक हो जाती है जैसे कोहनी व टखने की सन्धियों के भीतरी भाग से तथा घुटने के पीछे (पार्श्व) की ओर से जाने वाली नाड़िया
- त्वचा मे स्पर्श शून्यता आ जाती है अर्थात् प्रभावित भाग की त्वचा सुन्न हो जाती है। परिसरीय नाड़ियों के कारण त्वचीय व स्नायु सम्बन्धी लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

प्रेरक नाडियो मे परिवर्तन

हाथ व पाँव की मास पेशियो का क्षय होता है व कमजोर पड जाती है। अगुलियो की सूक्ष्म गति मे बाधा पडती है या कमजोर पड जाती है। हाथ पाव की मास पेशियो का पक्ष घात होने के कारण उनमे वक्रता उत्पन्न हो जाती है। इनके अतिरिक्त लिवर तथा अस्थि मज्जा भी प्रभावित होती है। नेफराइटिस, आइराइटिस, आइरिडोसाइक्लाइटिस आदि अवस्थाये भी इस रोग से पीडित व्यक्ति मे पाई जाती है।

कुष्ठ रोग का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है

1– इन्डिटरमीनेट,
2– ट्यूबरकुलोयड,
3– बाडरलाइन,
4– लेप्रोमेटस,
5– नान लेप्रोमेटस
6– मेक्यूलो एनेस्थेटिक,
7– पोलीन्यूराइटिक,

निदान

(क) शयनिक लक्षण– इसमे रोगी की त्वचा पर विद्यमान धब्बो का परीक्षण निम्नलिखित बिन्दुओ के लिये किया जाना चाहिये।

हल्के रग या लाली युक्त पीले धब्बे, त्वचा की स्थूलता, चपटे उभरे हुए चेतनायुक्त या चेतनाशून्य धब्बे प्रभावित भाग पर ठडे व गर्म तापक्रम का अनुभव नही होना, दर्द व स्पर्श का अनुभव होना आदि।

धब्बा मे पूर्ण या आशिक चेतना शून्यता उत्पन्न हो जाती है अर्थात् प्रभावित भाग सुन्न हो जाता है। इनकी विशेषता यह होती है कि धब्बे दीर्घ समय तक रह सकते है तथा उपचार या बिना किसी उपचार के बिल्कुल ठीक हो सकते है या ट्यूबरकुलोयड अवस्था मे परिवर्तित हो जाते है। लेप्रोमेटस अवस्था मे बहुत कम परिवर्तित होते है।

(ख) जीवाणु सम्बन्धी परीक्षण— इस प्रकार का परीक्षण प्राय: त्वचा व नासिका श्राव का लेप बनाकर किया जाता है। परिणाम बताने से पहले लेप के कम से कम 200 क्षेत्र सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखे जाने चाहिये।

उपचार

वयस्क के लिए डेप्सोन औषधि की मात्रा 6-10 मि ग्रा प्रति कि ग्रा शारीरिक वजन की दर से 50 से 100 मि ग्रा प्रतिदिन सप्ताह मे सात दिन नियमित रूप से दी जानी चाहिये। एक लेप्रोमेटस रोगी को एक सप्ताह मे प्राय 600 मि ग्रा डप्सोन देनी चाहिये।

प्रारम्भिक अवस्था मे कुष्ठ रोग का उपचार किया जा सकता है। कुष्ठ रोगी के लिए डप्सोन एक राम बाण औषधि है यह आसानी से उपलब्ध है, रोगी इसे आसानी से ले सकता है। यदि बताई गई मात्रा मे ली जाय तो इसका रोगी के शरीर पर कुप्रभाव नहीं होता। यह प्रभावी तथा सस्ती है।

आयु अनुसार औषधि की मात्रा

5 वर्ष तक	100 मि० ग्रा० प्रति सप्ताह
5-9 वर्ष तक	200 मि० ग्रा० प्रति सप्ताह
10-14 वर्ष तक	300 मि० ग्रा० प्रति सप्ताह
14 वर्ष से ऊपर	600 मि० ग्रा० प्रति सप्ताह

उपचार कब तक दिया जाय

कुष्ठ रोगी को डेप्सोन से उपचार निरन्तर उस अवधि तक दिया जाना चाहिये जब तक रोग के लक्षण लुप्त नही हो जाते। इसके लिये निम्न बिन्दुओं को ध्यान मे रखना चाहिए-

* त्वचा पर धब्बों का समाप्त होना
* धब्बों मे लालिमा का समाप्त होना तथा धब्बों का विस्तार रुकना
* परिसरीय नाड़ियों मे दर्द, वेदना का अनुभव न होना
* त्वचा व नासिका श्राव मे कुष्ठ रोग के रोगाणुओं का विद्यमान न होना

रोगी जब उपशमित अवस्था में आ जाय तो इसके आगे उपचार की अवधि रोग के प्रकार पर निर्भर करेगी जो निम्न प्रकार है –

– नॉन लेप्रोमेटस 15 वर्ष – इनडिटरमिनेट 3 वर्ष – बॉर्डरलाइन लेप्रोमेटस 10 वर्ष	विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुमोदित

इस अवधि के बाद उपचार बन्द किया जा सकता है, लेकिन रोगी को सलाह दी जाये कि वह प्रत्येक 6 माह की अवधि से परीक्षण के लिये आये।

1– 450 – 600 मि० ग्रा० रिफाम्पीसिन तथा 100 मि० ग्रा० डेप्सोन प्रतिदिन 15 दिन से कुछ माह की अवधि तक दी जाये तत्पश्चात डेप्सोन की मात्रा निरन्तर दी जाये।
2– 100 मि० ग्रा० क्लोफाजिमिन तथा 100 मि० ग्रा० डेप्सोन प्रतिदिन 2–3 माह की अवधि तक दी जाये तत्पश्चात क्लोफाजिमिन की मात्रा कम करके 6–9 माह तक दी जाये। इस अवधि के बाद डेप्सोन की मात्रा निरन्तर दी जाये।
3– रिफाम्पीसिन + क्लोफाजिमिन + डेप्सोन 2 से 3 माह तक तत्पश्चात रिफाम्पीसिन बन्द कर दे तथा क्लोफाजिमिन एव डेप्सोन अगले 6–9 माह तक दे। बाद मे केवल डेप्सोन निरन्तर देते रहे।
4– थायमिटाजोन एव थाइसोनायजिड भी डेप्सोन के साथ दी जा सकती है।

बच्चो मे कुष्ठ रोग

शैशव काल व पाच वर्ष की कम आयु वर्ग के बच्चो मे कुष्ठ रोग बहुत होता है। इस काल मे बच्चो मे सक्रमण तो हो सकता है लेकिन लक्षण बहुत वर्ष बाद दिखाई देते है। बहुत अधिक एण्डेमिक क्षेत्रों मे यह रोग 0–4 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चो में हो सकता है। इस वर्ग मे रोग का होना एन्डेमिसिटी का सकेत है। यह प्राय 5–14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चो मे होता है अर्थात विद्यालय जाने वाले आयु वर्ग के बच्चे अधिक प्रभावित

होते हैं। इसका उपचार प्रारम्भिक अवस्था में किया जाना चाहिये ताकि गम्भीर अवस्था व शारीरिक विकृति से बचाया जा सके।

धनुषवाय (टिटनस)

(Tetanus)

यह रोग किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति में हो सकता है तथा क्लोस्ट्रीडियम टिटनी नामक जीवाणुओं से फैलता है। निम्नलिखित अवस्थाओं में रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर तन्त्रिका को प्रभावित कर सकते हैं

(क) चोट लगने के बाद या शल्य चिकित्सा के उपरान्त घाव के संक्रमित होने से तथा स्त्रियों में गर्भपात या प्रसव के बाद हो सकता है।

(ख) नवजात शिशु में कीटाणु नाभिनाल को संक्रमित करते हैं। नाभिनाल को काटते समय कीटाणुमुक्त ब्लेड या चाकू उपयोग में नहीं लाने से नाभिनाल संक्रमित हो जाती है।

इस रोग के परिणाम भयंकर होते हैं। प्रति वर्ष लाखों नवजात शिशु इस रोग के शिकार होते हैं।

अन्तर्विकास काल – प्रायः 3–21 दिन 1 दिन से कुछ माह तक हो सकता है।

लक्षण

रोगी में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं–मुख खोलने में कठिनाई होती है, ज्वर हो जाता है व धीरे–धीरे शरीर अकड़ने लगता है। विशेष रूप से गर्दन प्रभावित होती है तथा पीछे की ओर खिंचने लगती है। शरीर धनुष की आकृति की तरह मुड़ने लगता है। रोग में मृत्यु दर अधिक है। चिकित्सालय में ले जाकर उपचार कराना चाहिये।

निवारक उपाय

चोट लगने पर घाव साबुन आदि से साफ कर लेना चाहिए। यदि डिटोल उपलब्ध हो तो घाव को इससे धो लेना चाहिये। चिकित्सालय में जाकर पट्टी करवा लें तथा 24 घंटे के अन्दर टिटनस टॉक्साइड का टीका

लगवा लेना चाहिये। टिटनेस टॉक्साइड का दूसरा टीका 4 सप्ताह बाद तथा तीसरा 6 माह बाद लगवा लेना चाहिये।

नवजात शिशु मे इस रोग को रोकने के लिये गर्भवती स्त्री को टिटनेस की दो मात्रा गर्भावस्था मे 16-24 व 24-32 सप्ताह मे लगवा लेनी चाहिये। जन्म के बाद नाभिनाल काटते समय किटाणु मुक्त कैंची या ब्लेड का उपयोग किया जाना चाहिये। गर्भावस्था मे उपरोक्त दो मात्रा के लगवाने से प्रसव के समय माता को भी इस रोग के होने से बचाया जा सकता है।

रेबीज
(Rabies)

यह विषाणु जन्य तीव्र घातक रोग है जिसमे केन्द्रीय स्नायु संस्थान प्रभावित होता है। इसे हाइड्रोफोबिया (Hydrophobia) भी कहते हैं। रोगी को पानी से डर लगता है। कुत्ते, बिल्ली, भेडिये आदि इस रोग से संक्रमित होते हैं तथा जब यह किसी व्यक्ति को काटते हैं तो रोग के विषाणु लार के साथ व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर उसे संक्रमित करते हैं।

रोगोत्पादक कारक तत्त्व

यह रोग लिसावाइरस (Lyssavirus Type 1) विषाणु द्वारा फैलता है। संक्रमित जीव के स्नायु संस्थान, लार, मूत्र, लसिका स्राव, दूध आदि मे यह विषाणु विद्यमान होते हैं। लेकिन केन्द्रीय स्नायु संस्थान तथा लार ग्रन्थियो मे यह अत्यधिक मात्रा मे संक्रमित रहते हैं। विषाणु प्राय संक्रमित कुत्ते या बिल्ली की लार मे विद्यमान रहते हैं। संक्रमित जीव मे रोग के वास्तविक लक्षण प्रकट होने से 3-4 दिन पूर्व यह विषाणु उसकी लार मे आ जाते हैं तथा बीमारी की अवधि से मृत्यु तक विद्यमान रहते हैं। मनुष्य व बच्चे इस रोग से ज्यादा प्रभावित होते हैं।

रोग संचार विधि

संक्रमित जीव की लार के माध्यम से विषाणु स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँच कर उसे संक्रमित करते है। जब संक्रमित जीव किसी व्यक्ति को काटता है तो विषाणु लार के माध्यम से व्यक्ति के शरीर पर कटे फटे भाग से प्रवेश कर

जाते हैं। यदि सक्रमित व्यक्ति की लार स्वस्थ व्यक्ति के किसी फटे फटे भाग पर गिर जाए तो विषाणु व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करउ मे सक्रमित करते हैं।

अन्तर्विकास काल

प्राय 1–3 माह, लेकिन 10 दिन से 1 वर्ष तक भी हो सकता है। अन्तर्विकास काल निम्न बिन्दुओ पर भी निर्भर करता है —

सक्रमित जीव द्वारा स्वस्थ व्यक्ति के शरीर पर काटे जाने का स्थान, काटे जाने की गम्भीरता, विषाणुओ की सख्या, काटने वाले जीव की किस्म, शरीर का वस्त्रा से बचाव, उपचार जो लिया गया। तीव्र सक्रमण तथा चेहरे, सिर, बाजु आदि अग पर सक्रमित जीव द्वारा काटे जाने की अवस्था में स्वस्थ व्यक्ति शीघ्र सक्रमित होता है।

रोग लक्षण

प्रारम्भिक अवस्था–यह 1–4 दिन रहती है तथा सक्रमित व्यक्ति मे ज्वर, सिर दर्द, मालिन्य, मॉस पेशीयो मे दर्द, थकान, भूख कम लगना, मिचली तथा कै होना, गले मे दर्द, सूखी खाँसी आदि लक्षण दिखाई देते हैं जीव द्वारा काटे जाने के स्थान पर सुन्नता अनुभव होती है।

मस्तिष्कीय ज्वर अवस्था – इस अवस्था में रोगी आदि क्रियाए करने लगता है। तत्पश्चात रोगी को शोर, तेज प्रकाश, ठडी हवा आदि अच्छी नही लगती एव उनसे चमकने लगता है। कभी कभी उसे हवा से डर लगता है तथा जब हवा की लहर उसके पास से निकलती है तो गर्दन तथा कठ की मास पेशीयो में सकुचन होना है। तापक्रम 105° के तक पहुँच जाता है। स्थानीय म नीपात होने लगता है।

केन्द्रीय नाडियो के प्रभावित होने पर पक्षाघात जसी अवस्था आ जाती है जो भाग व चेहरे पर विशेष दिखाई देती है, निगलने म कठिनाई अनुभव होती है। मूह से लार अधिक आती है, निगलने में कठिनाई के कारण यह मूह से बाहर आने लगती है। डायफ्राम की मास पेशीयो का तीव्र सकुचन होता है जिससे रोगी तेज दर्द अनुभव करता है। प्राय बीमारी की अवस्था 2–3 दिन रहती है लेकिन कभी कभी 5–6 दिन भी हो सकती है। रोगी

की हालत बिगड जाती है एव मृत्यु हो जाती ह। रोगी का स्वस्थ होना नगण्य है।

उपचार

रोग का निदान निश्चित होने पर रोगी को एकान्त एव शात कमरे मे रखा जाए। उसके पास तेज प्रकाश, शोर तथा हवा आदि न हो। रोगी को आराम करने दिया जाए। पानी व द्रव उसे न दिए जाए। मोर्फिया (Morphia) औषधि पेश्यान्तरिक विधि से दी जाए जिससे मॉस पेशियो का सकुचन कम होने लगे।

रोगी की लार मे रोग के विषाणु विद्यमान होते है अत रोगी के पास जाने वालो को मुख पर मास्क, हाथो पर दस्ताने तथा शरीर पर एप्रन आदि का उपयोग करना चाहिए।

सक्रमित कुत्ते द्वारा व्यक्ति को काटे जाने के तुरन्त बाद निम्न विधियाँ उपयोग मे लाई जाए —

1 काटे हुए स्थान को साबुन व पानी से साफ करें। पानी के स्थान पर इथायल एल्कोहल उपयोग मे लाई जा सकती है। घाव पर साबुन न रहने पाए। बाद मे सिटावलोन आदि से घाव को साफ कर लिया जाए।

2 रोग प्रतिरक्षण टीके – एन्टी रेबीज वेक्सीन के टीके लगवाए जाने चाहिए। परीक्षण के बाद एन्टी रेबीज वेक्सीन के 14 टीके उदर पर उपचर्मीय विधि (Subcutaneous Method) से लगाए जाने चाहिए। प्रतिदिन एक टीका लगाया जाए तथा उदर की मध्य रेखा के दाई तथा बाई ओर क्रमश लगाए जिससे व्यक्ति को अधिक पीडा न हो।

रोहे (ट्रेकोमा)

(Trachoma)

यह एक विषाणु जन्य दीर्घकालीन रोग है जिसमे नेत्र झिल्ली तथा कनिका प्रभावित होते हैं तथा क्लेमाइडिया ट्रेकोमेटिस (Chlamydia Trachomatis) विषाणु द्वारा फैलता है। आखो की झिल्ली का लाल होना, दाने (रोहे) निकलना, जलन होना, आदि इस रोग के मुख्य लक्षण

है । इससे नेत्र की पलकें विकृत हो सकती हैं तथा यह बीमारी कभी-कभी नेत्र के लिए घातक भी सिद्ध हो सकती है ।

रोग प्रसार एवं रोगोत्पादक कारण

यह विश्व के सभी देशो मे व्यक्तियो को प्रभावित करता है । विश्व मे प्रतिवर्ष लगभग 4–5 करोड व्यक्ति इस रोग से प्रभावित होते हैं । इनमे से 1–2 प्रतिशत व्यक्ति या तो अन्धे हो जाते हैं या उनकी ज्योति प्रभावित होती है ।

यह रोग किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति को हो सकता है । लेकिन 1–5 वर्ष तक की आयु के बच्चे अधिक प्रभावित होते है तथा यह रोग प्रसार माध्यम का भी कार्य करते हैं । अस्वस्थ वातावरण, गन्दगी भीड-भाड वाले इलाके, गरीब बस्तियाँ आदि ऐसे अनेक बिन्दु प्रसार के मुख्य कारण है । यह रोग प्राय अप्रैल से सितम्बर की अवधि मे अधिक होता है ।

रोगी से स्वस्थ व्यक्ति तक सक्रमण सीधे सम्पर्क मे आने से या तौलिये, रूमाल आदि के माध्यम मे फैलता है । मक्खियां भी सक्रमण प्रसार मे सहायक होती हैं ।

अन्तर्विकास काल — प्राय 5–12 दिन

रोग लक्षण

आखो का लाल होना, जलन, सूजन, दा[illegible] निकल [illegible], आखो से पानी निकलना, दृष्टि में बाधा आदि [illegible] [illegible] होते हैं । आख मे ऐसा अनुभव होता है जैसे को[illegible] यह स्थिति दानो के कारण भी [illegible] भव होती ह[illegible] फोबिया एव ब्लेफेरोस्पा[illegible] वस्था भी[illegible] से पस के समान गाढा [illegible] हैं [illegible] जाती हैं ।

उपचार

यदि समय पर उपचार किया जाए तो परिणाम बहुत अच्छे होते है। लेकिन जटिलता उत्पन्न होने की स्थिति मे नेत्र, झिल्ली, कनिका तथा पलकें प्रभावित/विकृत हो सकते है।

सल्फोनामाइड औषधियो के उपयोग से उपचार किया जा सकता है तथा परिणाम भी अच्छे होते हैं। इसके अतिरिक्त टेट्रासाइक्लिन, एम्पीसिलिन आदि औषधिया भी उपयोगी है।

	औषधि	आयु	मात्रा	अवधि
1	सल्फोनामाइड	वयस्क	0 5–1 ग्रा दिन मे चार बार	10–14 दिन तक
2	टेट्रासाइक्लिन	वयस्क	250 मि ग्रा दिन मे चार बार	10–12 दिन तक
3	एम्पीसिलिन	वयस्क	यथा	7–10 दिन तक

इसके अतिरिक्त एस्प्रिन, एनालजिन आदि दद निरोधक औषधि दी जानी चाहिए।

आखो मे आयन्टमेट या ड्रोप्स दिन मे 2–3 बार डाली जानी चाहिए इनका उपयोग उस समय तक करे जब तक उपरोक्त लक्षण लुप्त न हो जाए।

आखो को निष्कीटित स्वच्छ पानी एव रूई से साफ करें। एक आख पर उपयोग मे लाए रुई के स्वाब को दूसरी आख के लिए उपयोग मे न लाए। व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। उपयोग में लाए गए तौलिये, रूमाल आदि को साबुन व पानी से अच्छी प्रकार धोकर दुबारा उपयोग मे लाए।

निवारक उपाय

व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। घर मे किसी सदस्य को रोह की बीमारी होने पर उसके द्वारा उपयोग मे लाए गए तौलिए, रूमाल तकिये चद्दर आदि का उपयोग दूसरे सदस्य न करें। रोगी के सम्पर्क मे

है। इसमे नेत्र की पलकें विकृत हो सकती हैं तथा यह बीमारी कभी-कभी नेत्र के लिए घातक भी सिद्ध हो सकती है।

रोग प्रसार एव रोगोत्पादक कारण

यह विश्व के सभी देशो मे व्यक्तियो को प्रभावित करता है। विश्व मे प्रतिवर्ष लगभग 4–5 करोड व्यक्ति इस रोग से प्रभावित होते है। इनमे से 1–2 प्रतिशत व्यक्ति या तो अन्धे हो जाते हैं या उनकी ज्योति प्रभावित होती है।

यह रोग किसी भी आयु वग के व्यक्ति को हो सकता है। लेकिन 1–5 वष तक की आयु के बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं तथा यह रोग प्रसार माध्यम का भी काय करते हैं। अस्वस्थ वातावरण, गन्दगी भीड-भाड वाले इलाके, गरीब बस्तिया आदि एसे अनेक बिन्दु प्रसार के मुख्य कारण है। यह रोग प्राय अप्रेल से सितम्बर की अवधि मे अधिक होता है।

रोगी से स्वस्थ व्यक्ति तक सक्रमण सीधे सम्पक मे आने से या तोलिये, रुमाल आदि के माध्यम से फैलता है। मक्खिया भी सक्रमण प्रसार मे सहायक होती हैं।

अन्तर्विकास काल — प्राय 5–12 दिन

रोग लक्षण

आखो का लाल होना, जलन, सूजन, दाने (रोहे) निकलना, दद, आखो से पानी निकलना, दृष्टि में बाधा आदि लक्षण रोगी द्वारा अनुभव होते हैं। आख मे ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बाह्य वस्तु रडक रही है। यह स्थिति दानो के कारण भी अनुभव होती है। इसके अतिरिक्त फोटोफोबिया एव ब्लेफेरोस्पाज्म आदि अवस्था भी अनुभव होती हैं। आखो से पस के समान गाढा द्रव आने लगता है फलस्वरूप पलकें चिपक जाती हैं।

उपचार

यदि समय पर उपचार किया जाए तो परिणाम बहुत अच्छे होते हैं। लेकिन जटिलता उत्पन्न होने की स्थिति मे नेत्र, झिल्ली, कनिका तथा पलकें प्रभावित/विकृत हो सकते हैं।

सल्फोनामाइड औषधियो के उपयोग से उपचार किया जा सकता है तथा परिणाम भी अच्छे होते हैं। इसके अतिरिक्त टेट्रासाइक्लिन, एम्पीसिलिन आदि औषधिया भी उपयोगी है।

	औषधि	आयु	मात्रा	अवधि
1	सल्फोनामाइड	वयस्क	0 5–1 ग्रा दिन मे चार बार	10–14 दिन तक
2	टेट्रासाइक्लिन	वयस्क	250 मि ग्रा दिन मे चार बार	10–12 दिन तक
3	एम्पीसिलिन	वयस्क	यथा	7–10 दिन तक

इसके अतिरिक्त एस्प्रिन, एनालजिन आदि दर्द निरोधक औषधि दी जानी चाहिए।

आखो मे आयटमेंट या ड्रोप्स दिन मे 2–3 बार डाली जानी चाहिए इनका उपयोग उस समय तक करे जब तक उपरोक्त लक्षण लुप्त न हो जाए।

आखो को निष्कीटित स्वच्छ पानी एव रूई से साफ करें। एक आख पर उपयोग मे लाए रूई के स्वाब को दूसरी आख के लिए उपयोग मे न लाए। व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। उपयोग मे लाए गए तौलिये, रूमाल आदि को साबुन व पानी से अच्छी प्रकार धोकर दुबारा उपयोग मे लाए।

निवारक उपाय

व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखा जाए। घर मे किसी सदस्य को रोहे की बीमारी होने पर उसके द्वारा उपयोग मे लाए गए तौलिए, रूमाल तकिये चद्दर आदि का उपयोग दूसरे सदस्य न करें। रोगी के सम्पर्क मे

न आए /उनसे दूर रहे। रोगी की परिचारिका को चाहिए कि वह व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान रखें, रोगी की देखभाल के बाद हाथ साबुन व पानी से धो ले, रोगी के वस्त्र, रूमाल, तौलिए आदि को गर्म पानी व साबुन से धोकर साफ करें।

रोग की महामारी की अवस्था मे व्यक्तियो के बचाव हेतु औषधियो का उपयोग करें।

उपदंश रोग

(Syphilis)

यह एक लैंगिक सचारित (Sexually transmitted) सक्रामक रोग है जो ट्रेपोनिमा पेलिडम (Treponema pallidum) जीवाणु द्वारा फैलता है यह सक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति तक लगिक/यौन सम्पर्क के समय सचारित होता है।

रोग प्रसार एव रोगोत्पादक कारण

विश्व के प्राय सभी देशो में व्यक्ति इस रोग से ग्रसित होते हैं। भारत में मलेरिया तथा तपेदिक के बाद इस रोग से ही व्यक्ति अधिक पीडित रहते हैं। बडे शहरो, बन्दरगाहो, औद्योगिक क्षेत्रो में इस रोग का प्रसार अधिक होता है।

वैश्यावृत्ति, भावात्मक तत्त्व, युवा वर्ग, जीवन में निराशा, शहरीकरण व औद्योगिकरण, जन समुदाय का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, रोग का उपचार न कराना तथा सामाजिक कारणो से उसे छुपाना, शराब का नशा, पति-पत्नि के मध्य लगिक सम्बन्धो का कटु होना, मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति, स्थानीय विवाह आदि अनेक ऐसे पूर्वप्रवृत्त तत्त्व (Predisposing factors) इस रोग के प्रसार के लिए उत्तरदायी हैं। यह बीमारी नवजात शिशु में भी हो सकती है लेकिन लक्षण कुछ समय बाद दिखाई दे सकते है।

अन्तर्विकास काल—प्राय 10–90 दिन।

रोग लक्षण

रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे सक्रमित स्थान (प्रजनन अग, ओठ, मुख आदि) पर एक ठोस सूजन दिखाई देती है। बाद मे इस सूजन मे वृण हो जाते हैं। इसे शेंकर (Chancre) कहते हैं। स्थानीय लसिका ग्रन्थिया आकार मे बढ जाती हैं तथा उनमें सूजन आ जाती है। लेकिन उनमे दर्द या पस नही होता।

धीरे-धीरे प्राथमिक वृण ठीक होने लगता है एव 2–6 माह के अन्तराल पर शारीरिक लक्षण दिखाई देने लगते हैं जैसे मालिन्य, सिर दर्द, गले में दर्द, हल्का ज्वर आदि। उपचर्मीय चिकत्ते दिखाई देते हैं जो तेज सूर्य के प्रकाश में दिखाई दे सकते हैं। बाद में यह चिकत्ते सुडोल तथा हल्के लाल रग के समान दिखाई देते हैं तथा इनमें खुजली नही होती। यह चिकत्ते नमी वाले स्थान (गुदा के आस पास का स्थान) पर ऊँचे उभर आते है जिन्हे कोन्डाइलोमेटा (Condylomata) कहते हैं।

मुख गुहा की श्लेष्मकला पर छिछरे वृण दिखाई देते हैं जिन पर लाल धारी होती है तथा पतली सफेद झिल्ली से ढके होते हैं। यह बहुत अधिक सक्रमित होते हैं। शरीर की विभिन्न लसिक ग्रथिया आकार में बढ जाती है।

रोग की अग्रिम अवस्था में त्वचा, अधचर्मीय तन्तु, अस्थियां, जीभ, यकृत, धमनी (Aorta), केन्द्रीय स्नायु सस्थान आदि प्रभावित हो जाते हैं।

उपचार

पेनिसिलिन 'जी' (Penicillin G) इस रोग के उपचार के लिए प्रभावकारी औषधि है इसके अतिरिक्त टेट्रासाइक्लिन एरिथ्रोमाइसिन आदि औषधिया भी लाभकारी है।

प्राथमिक तथा द्वितीय चरण के रोगियो के लिए बेन्जाथिन पेनिसिलिन 'जी' 2 4 लाख एक मात्रा में या एक्वस प्रोकेन पेनिसिलिन 'जी'

(Aquous Procaine Penicillin G) 60,0000 युनिट प्रतिदिन 8 दिन तक दी जाती है। जटिल अवस्था मे प्राकेन पनिसिलिन की मात्रा 14 दिन तक दें।

निवारक उपाय

रोग से पीड़ित व्यक्तियों का पता लगाकर उनका उपचार किया जाए तथा स्वस्थ व्यक्ति के सम्पर्क को रोका जाए। सामाजिक सुधार भी आवश्यक है जैसे वेश्यावृत्ति को समाप्त कर उन्हे रोजगार मे लगाना तथा सामाजिक आदर प्रदान किया जाना, रहन-सहन के स्तर का ऊँचा उठाना, प्रजनन अंगो का पूर्व परीक्षण, ऐसे साहित्य, पुस्तको आदि पर प्रतिबन्ध लगाना जो यौन उत्तेजना उत्पन्न करे इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य शिक्षा का प्रचार एव प्रसार होना चाहिए ।

सूजाक

(Gonorrhoea)

यह यौन सम्बन्धी सक्रामक रोग है जो नाइसेरिया गनोरिया (Neisseria gonorrhoea) नामक जीवाणु द्वारा सचारित होता है। रोग के अन्य कारक तत्व उपदश रोग जैसे ही हैं।

अन्तर्विकास काल- प्राय 2–10 दिन।

रोग लक्षण

रोग लक्षण निम्न तीन बिन्दुओ पर निभर करेंगे –

(क) सक्रमण से प्रभावित शरीर का अग

(ख) सक्रमण की अवधि

(ग) स्थानीय या किसी मस्थान (Systend)

पुरुष मे रोग लक्षण – सक्रमण के 2–6 दिन के अन्तराल पर यूरेथ्राइटिस (Urethritis) के लक्षण जैसे मूत्र में पस का आना, पेशाब करने में कठिनाई तथा बार बार मूत्र का आना आदि दिखाई देते हैं। इन्गवायनल लसिका ग्रन्थियो

मे सूजन, लिंग पर सूजन, पेरियूरेथ्रा नासूर आदि लक्षण भी अनुभव होने लगते है। मल द्वार के बाहर जलन व खुजली का अनुभव होना तथा मवाद (पस) का आना आदि लक्षण भी दिखाई दे सकते है।

महिला मे रोग लक्षण – बार-बार मूत्र का आना, पेशाब करने मे कठिनाई योनि से मवाद का आना, असामान्य रक्त स्राव, मलद्वार तथा गुदा मे तकलीफ अनुभव होना आदि लक्षण दिखाई देते है। अग्रिम अवस्था मे सेल्पिनजाइटिस (Salpingitis), पेरिटोनाइटिस एव साथ मे मिचली तथा कै आना, पेल्विक एब्सेस (Pelvic abscess) आदि जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती है।

उपचार

पेनिसिलिन "जी", एम्पीसिलिन, टैटासाइक्लिन, एमोक्सिलीन, स्पेक्टिनोमाइसिन आदि औषधिया, इस रोग के लिए बहुत उपयोगी एव प्रभावी हैं। प्रोकेन पेनिसिलिन 'जी' भी दी जा सकती है। कृपया तालिका देखें।

क्र म	औषधि का नाम	मात्रा एव अवधि
1	प्रोकेन पेनिसिलिन 'जी'	4 8 लाख यूनिट पेश्यान्तरिक विधि से
2	एम्पीसिलिन	3 5 ग्राम एक मात्रा मे
3	टट्रासाइक्लिन	500 मि ग्रा दिन मे चार बार 5 दिन तक
4	एमोक्सिलिन	3 ग्राम एक मात्रा में
5	स्पेक्टिनोमाइसिन	2 ग्राम पेश्यान्तरिक विधि से।

निवारक उपाय

रोग से ग्रसित व्यक्तियों का शीघ्र उपचार किया जाना चाहिए। रोगी एवं स्वस्थ व्यक्ति के सम्पर्क को समाप्त किया जाए। असंक्रमित व्यक्ति को संक्रमित तथा रोग ग्रस्त व्यक्ति से सहवास नहीं करना चाहिए। रोग ग्रसित व्यक्ति को चाहिए कि वह समय पर रोग का इलाज कराए जिससे रोग का संक्रमण अन्य व्यक्ति को न हो सके। यौन क्रिया के समय निरोध काम में लें तथा एम्पीसिलिन या प्रोकेन पेनिसिलिन की निर्धारित मात्रा लें।

**

परिशिष्ट

- नारू रोग
- एड्स
- काला जार
- रोग प्रतिरक्षण टीका सारिणी
- संचारी रोगों की रोकथाम के लिए

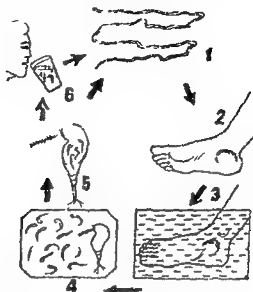
नारू रोग
(Guinea worm)

यह रोग डोरे के समान कीट से उत्पन्न होता है। इस कीट को ड्रेकनकुलस मेडिनेसिस कहते हैं। मादा कीट लगभग एक मीटर लम्बी होती है तथा रोगी के शरीर मे विकसित होती है। पूर्ण विकसित होने पर रोगी के शरीर से त्वचा को भेदकर बाहर आती है। शरीर का वह भाग जो प्राय पानी के सम्पर्क मे आता है वही से मादा कीट शरीर की त्वचा भेद कर बाहर निकलती है तथा पानी मे अण्डे देती है। प्राय यह पाव की त्वचा भेदकर ही बाहर निकलती है लेकिन शरीर का कोई भी भाग प्रभावित हो सकता है। यह रोग अत्यन्त कष्टदायक होता है लेकिन घातक नही होता नारू रोग उन स्थानो पर अधिक होता है जहां पर लोग तालाब, बावडी, झील, जोहडो आदि का पानी पीते हैं।

परजीवी का जीवन चक्र

परजीवी का जीवन चक्र मनुष्य व साइक्लोप मे पूर्ण होता है। मादा कीट मनुष्य शरीर मे विकसित होकर अण्डे देने के लिये शरीर की त्वचा छेदकर बाहर निकलती है। प्राय पाव की त्वचा को छेदकर मादा कीट बाहर निकलती है। शरीर के जिस भाग से कीट बाहर निकलता है वहा त्वचा पर एक छाला बन जाता है जिसके फूटने से द्रव के साथ मादा असंख्य सूक्ष्म भ्रूण के साथ विसर्जित करती है। जब रोगी किसी झील, तालाब, नदी, आदि मे नहाने के लिए जाता है तो ये सूक्ष्म भ्रूण पानी मे

मिल जाते है। पानी मे ये भ्रूण स्वतत्र रूप से विचरित करते हैं तथा पा
मे विद्यमान साइक्लोप इनको निगल जाते है।



1 प्रौढ परजीवी, 2 नारू रोग से सक्रमित व्यक्ति के पाव पर छाला, 3 पानी मे पाव तथा छाले मे से बाहर निकलता सक्रमित स्राव एव बाला (नारू) 4 पानी मे साइक्लोप्स एव लार्वा, 5 साइक्लोप के शरीर मे नारू लार्वा, 6 सक्रमित पानी पीते हुए व्यक्ति।

साइक्लोप के शरीर मे लार्वा अपना विकास व वृद्धि करते हैं तथा 2–3 सप्ताह मे पूर्ण विकसित हो जाते है। यही लार्वा सक्रमण करते हैं। सक्रमित साइक्लोप से दूषित जल को पीने से ये लार्वा मनुष्य के आमाशय मे पहुच जाते हैं। आमाशय के आम्लिक रस से साइक्लोप नष्ट हो जाते हैं लेकिन लार्वा मनुष्य शरीर मे विकसित होकर कीट मे परिवर्तित हो जाते है। नर व मादा कीट का मिलन होता है तथा मादा कीट को गर्भित कर नर नष्ट हो जाता है। मादा कीट अब अध चर्मीय तन्तुओ की ओर अग्रसर होती हैं। प्राय शरीर के उन अगो की ओर जाती है जो पानी के सम्पर्क मे आते हो जैसे पैर। मादा अपना पूरा विकास लगभग एक वर्ष मे कर लेती है। जब

कीट व्यक्ति के शरीर से त्वचा भेदकर बाहर निकलता है उससे पूर्व अ के उस स्थान पर एक छाला बन जाता है। यह छाला मादा कीट द्वारा स्रवित विषैले द्रव के कारण बनता है। जब व्यक्ति पानी में जाता है तो छाला पानी





नारू को बाहर निकालते हुए ↑

← नारू से प्रभावित पैर

के सम्पर्क मे आने से फूट जाता है तथा कीट के गर्भाशय से लाखों भ्रूण सफेद द्रव के साथ पानी मे विसर्जित हो जाते है। इन भ्रूणों को साइक्लोप फिर निगल लेते हैं और जीवन चक्र की पुनरावृत्ति होती है। फिर रोगी की त्वचा से बाहर निकल कर अपना जीवन चक्र पुन आरम्भ करते हैं।

दूषित जल पीने और रोगी के शरीर मे से कीट बनकर बाहर निकलने तक लगभग 10–14 माह या एक वर्ष लग जाता है।

जटिलताएँ एव उपचार

जब कीट रोगी के शरीर से बाहर निकलता है तो डोरे के समान होता है तथा इसे खींचने से टूटने पर द्रव शरीर के उस भाग मे फैल कर सूजन आदि उत्पन्न करता है जिससे कष्ट होता है, घाव बन जाता है व पस भी पड जाता है। अत इस कीट को निकालते समय सावधानी बरतनी

चाहिए तथा धीरे-धीरे दियासलाई की तीली आदि पर लपेट कर बाहर निकालना चाहिए। उचित यही होगा कि रोगी को पास के चिकित्सालय मे ले जाएं जहाँ चिकित्सक शरीर के प्रभावित भाग को सज्ञाशून्य करके चीरा लगा कर कीट बाहर निकाल दें तथा मरहम पट्टी कर दे।

सही समय पर उपचार नही कराने से सक्रमित अग विकृत हो सकता है। कभी कभी पैर की विकृति के कारण प्रभावित व्यक्ति को लगडा कर चलना पडता है।

निवारक उपाय

- कोई भी रोगी जिसके शरीर के किसी अग से सूक्ष्म भ्रूण विसर्जित करने वाला कीट बाहर निकलता हो उसे उन बावडी, तालाव आदि मे न जाने दे जिनका पानी पीने के उपयोग मे आता हो।
- बावडी, तालाव, आदि से पानी को बाल्टी व रस्सी की सहायता से बाहर निकाल कर काम मे लाए।
- रोग से ग्रसित व्यक्ति का उपचार शीघ्र कराए।
- जिन क्षेत्रो मे रोग फैला हुआ हो पानी को उबाल कर दोहरे कपडे से छान कर बाद मे पीने के उपयोग मे लाया जाए।
- शुद्ध व स्वच्छ स्रोतो से जल पीना चाहिए जिनमे हेन्ड पम्प या नल लगे हो।

एड्स

एक्वायर्ड इम्यून डिफिसियेंसी सिन्ड्रोम

(Acquired immune deficiency syndrome)

यह विषाणु जन्य सक्रामक रोग है जो ह्यूमन टी सेल लिफोट्रोफिक विषाणु टाइप-3 द्वारा फैलता है। यह मन्द व उग्र रूप मे हो सकता है। इस रोग के कारण पीडित व्यक्ति की रोग प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है।

फलस्वरूप एड्स से पीडित व्यक्ति को अन्य रोग प्रभावित करते है एवं रोग घातक रूप ले लेता है।

एड्स रोग सब प्रथम 1981 के मध्य मे अमरीका मे प्रकट हुआ और उसके बाद विश्व के अन्य देशो मे फैलने लगा। भारत मे इसके होने की शका बनी हुई है।

रोगोत्पादक कारण

एड्स के रोगियो या एसे व्यक्तियो से जि हे एड्स होने की सम्भावना या आशका हो उनके आकस्मिक या सहज सम्पर्क मे आने वाले स्वस्थ व्यक्ति या परिचारिका को बीमारी होने की आशका / खतरा प्राय नही होता। यद्यपि रोगी की लार एव आसू मे रोग के विषाणु पाए गए है लेकिन इस माध्यम से रोग प्रसार होना सिद्ध नही हुआ है।

रोग के मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं --

1 ह्यूमन टी सेल लिम्फोट्रोफिक विषाणु टाइप-3।
2 बहु लगिक सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति इस रोग से अधिक ग्रसित होते है चाहे सम्बन्ध समलैंगिक, उभयलगिक या विषमलगिक हो।
3 सक्रमित रक्त ट्रासफ्यूजन से भी रोग के विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर उसे सक्रमित कर सकते है।
4 सक्रमण युक्त सुई एव सीरिज से मादक द्रव्य लेने से इस रोग का खतरा बढ जाता है।
5 हीमोफीलिया, थैलेसीमिया, एप्लास्टिक एनीमिया, यौन सम्बधी रोग आदि से पीडित व्यक्ति एड्स के शिकार आसानी से हो सकते हैं।
6 रोग से सक्रमित माता से इस रोग का सक्रमण शिशु को हो सकता है।
7 इस रोग से पुरुष अधिक ग्रसित होते है। वैसे यह महिलाओ को भी प्रभावित करता है।
8 वेश्याए तथा समलगिक सभोग करने वाले व्यक्ति इस रोग के प्रसार मे सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तियो का एक देश से दूसरे देश मे जाना भी रोग प्रसार का माध्यम है।

अन्तर्विकास काल—प्राय 6 महिने से 5 वर्ष तक।

रोग लक्षण

रोग के विषाणु का सक्रमण किसी भी व्यक्ति को हो सकता है लेकिन यह आवश्यक नही कि उस व्यक्ति मे रोग लक्षण विद्यमान हो। कुछ सक्रमित व्यक्तियो मे रोग लक्षण प्रतीत नही होते तथा वे स्वय को स्वस्थ अनुभव करते हैं। एक रोग ग्रसित व्यक्ति मे प्राय निम्न लक्षण अनुभव होते हैं–

थकान, ज्वर, खांसी, भूख न लगना, दस्त, वजन कम होना, रात को पसीना आना आदि। ज्वर व दस्त चिरकालिक (Chronic) रुप में भी विद्यमान हो सकते हैं। गर्दन, जांघ व बगल की लसिका ग्रथियो में सूजन आ जाती है। त्वचा रोग भी हो सकता है।

रोग निवारक उपाय

1 बहु लैंगिक या यौन सम्बध न रखें। किसी अजनवी के साथ सहवास न करें

2 समलैंगिक सभोग न करें। वेश्याओ के साथ सभोग न करे।

3 रोग सक्रमण रक्त माध्यम से होता है अत सक्रमित सूई व सीरिंज का उपयोग मादक द्रव्य लेने के लिए या ट्रासफ्यूजन के लिए न करे इन्ट्रावीनस इन्जेक्शन स्वय न ले।

4 उच्च खतरा वर्ग के व्यक्तियो तथा एड्स के रोगियो का दांत-ब्रुश, ब्लेड आदि का उपयोग न करें।

5 यदि यह पता लग जाए कि एड्स से सक्रमित व्यक्ति के रक्त मे रोग विषाणु के एटी बॉडी विद्यमान हैं तो उन व्यक्तियो से यौन सबन्ध न रखें।

6 इन्जेक्शन आदि के लिए जीवाणु-मुक्त सीरिंज का प्रयोग करें।

उपचार

अभी एडस् रोग का कोई उपचार विदित नही है लेकिन दूसरे सक्रमण से बचने के लिए एन्टीबॉयटिक्स दें तथा लाक्षणिक उपचार करें। ज्वर आदि के लिए अनाल्जिन या पेरासिटामोल दी जा सकती है। चिकित्सक से सम्पर्क करें।

काला जार

(Kala azar)

काला जार का अर्थ है काली बीमारी। यह रोग लीशमेनिया डोनोवनाई (Leishmania donovanai) परजीवी द्वारा फैलता है। इसका सचार बालू मक्खी (Sand fly) द्वारा होता है। बीमारी के मुख्य लक्षण हैं विषम ज्वर (Irregular fever), रक्त की कमी, कमजोरी, शारीरिक हीनता एव यकृत तथा तिल्ली का बढना।

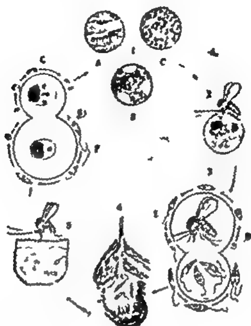
काला जार प्राय मैदानी इलाको मे पाया जाने वाला रोग है तथा प्रौढ व्यक्ति इससे ग्रसित होते है। बच्चे भी इस रोग से ग्रसित हो सकते है। बिहार, पश्चिम बगाल, त्रिपुरा, पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि राज्यो मे यह अधिक होता है। अस्वस्थ वातावरण इस रोग के लिए उत्तरदायी है।

परजीवी का जीवन चक्र

लीशमेनिया डोनोवनाइ अपना जीवन चक्र व्यक्ति तथा बालू मक्खी दोनो मे पूर्ण करता है। परजीवी की आकृति व्यक्ति मे लीशमेनियल तथा मक्खी मे लेप्टोमोनाड (Laptomonad) कहलाती है।

व्यक्ति के रेटिकुलो-एन्डोथीलियल तत्र (Reticulo endothelial system) मे परजीवी की लीशमेनियल आकृति अपनी वश-वृद्धि द्विगुणक-विभाजन (Binary fission) विधि द्वारा करती है। द्विगुणक विभाजन क्रिया निरन्तर होती रहती है, कोष पूर्ण रूप से इस आकृति द्वारा भर जाता है। कोष के आकार मे वृद्धि हो जाती है तथा अन्तत कोष फट जाता है। फलस्वरूप 50–200 या और अधिक परजीवी कोष के साइटोप्लाज्म मे स्वतत्र दिखाई देने लगते हैं। यह परजीवी पुन स्वस्थ कोष मे प्रवेश कर उसे सक्रमित करते हैं एव चक्र की पुनरावृति होती है। इस प्रकार धीरे-धीरे पूरा रेटिकुलो एन्डोथीलियल तत्र सक्रमित हो जाता है। न्यूट्रोफिलिक ग्रेनुलोसाइट तथा मोनोसाइट रुधिर मे विद्यमान स्वतत्र परजीवी मे से कुछ

को नष्ट कर देते हैं। जब मक्खी संक्रमित व्यक्ति को काटती है तो रक्त के साथ स्वतन्त्र परजीवीयो को भी अपने शरीर मे ले लेती है।



1 A यकृत, B अस्थि मज्जा तथा तिल्ली म परजीवी 2 मनुष्य के शरीर से संक्रमित रक्त लेती हुई बालू मक्खी, 3 बालू मक्खी म द्विगुणक विभाजन एव वंश वृद्धि करते हुए परजीवी 4 अन्न नलिका म परजीवी 5 व्यक्ति के शरीर मे परजीवियो को प्रवेश कराती बालू मक्खी 6 रेटीकुलो एडोथीलियल तन्त्र म परजीवी का विभाजन एव वृद्धि।

मक्खी के शरीर मे प्रवेश पाने के बाद लीशमेनियल परजीवी लेप्टो-मोनाड आकृति मे बदल जाते हैं तथा वहा पुन द्विगुणक विभाजन विधि से से वंश वृद्धि करते हैं। यह क्रिया बालू मक्खी की मिड गट मे होती है तथा बहुत से तन्तु पुच्छ (Flagellates) निकल आते हैं जो आहार नली के अग्रिम भाग अन्न नलिका (Pharynx) तथा मुख गुहा (Buccal Cavity) की ओर अग्रसर होते हैं। संक्रमित व्यक्ति से रक्त लेने के 6–9 दिन बाद मक्खी की अन्न नलिका मे इन परजीवीयो की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। जब संक्रमित मक्खी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तो परजीवी उस व्यक्ति के रक्त सचार मे प्रवेश पा जाते है।

इस प्रकार परजीवी अपनी जीवन चक्र पूरा करता है।

अन्तर्विकास काल प्राय 1–3 माह, कभी–कभी यह 10 वर्ष तक हो सकता है ।

रोग लक्षण

सक्रमित व्यक्ति को तीव्र विषम ज्वर होता है तथा पसीना आता है। कभी–कभी यह ज्वर 24 घन्टो मे दो बार तीव्र रूप ले लेता है। यकृत तथा तिल्ली बढ जाते हैं। तिल्ली के आकार मे अधिक वृद्धि होती हैं। यदि समय पर निदान एव उपचार नही किया जाय तो व्यक्ति के शरीर मे रक्त की कमी आ जाती है, वह कमजोर हो जाता है । शरीर पर बदरंग धब्बे दिखाई देने लगते हैं विशेष रुप से चहरे पर । लसिका ग्रन्थियो का आकार बढ जाता है।

रोग निदान

(1) अस्थि मज्जा मे L D bodies का विद्यमान होना (2) एल्डिहाइड परीक्षण 3 माह बाद धनात्मक होता है। (3) लाल व स्वेत रक्त कणो के लिए रक्त परीक्षण (4) सीरोलोजीकल परिक्षण

रोग निवारण उपाय

(क) कीटनाशक औषधियो के छिडकाव द्वारा मक्खियो को नष्ट किया जाए ।

(ख) मक्खियो के प्रजनन केन्द्रो को नष्ट किया जाए ।

(ग) रोग का शीघ्र निदान कर रोगी का उपचार किया जाए।

(घ) मच्छरदानी उपयोग मे लाए ।

रोग प्रतिरक्षण टीका सारिणी

गर्भवती माताओ को टीके

प्रसव पूर्व गर्भवती माताओ को टिटनस टीका

प्रथम मात्रा – 20–24 सप्ताह

द्वितीय मात्रा – 36–38 सप्ताह

बच्चों को टीके

आयु के अनुसार विभिन्न टीके निम्न प्रकार दिए जाने चाहिए

आयु	
3–9 माह	–डी पी टी 1–2 माह के अन्तराल से तीन मात्राएँ –पोलियो वेक्सीन–मुख से सेवन कराई जाए, 1-2 माह के अन्तराल से तीन मात्राए –बी सी जी का टीका –चेचक का टीका
9–12 माह	खसरे का टीका (Measels vaccine) एक टीका पेश्यान्तरिक विधि से।
18–24 माह	–डी पी टी व पोलियो की सवर्धक मात्रा (Booster dose)
5–6 माह (विद्यालय में प्रवेश के समय)	–डी टी (गलघाटू व धनुषबाय) का सवर्धक टीका –मियादि ज्वर का समोजक या द्विसयोजक वेक्सीन (Mono or bivalent vaccine) का पहला टीका तथा 1–2 माह के अन्तराल पर दूसरा टीका।
10 वर्ष	टिटनस टॉक्साइड (धनुषबाय के टीके) की सवर्धक मात्रा। –मियादी ज्वर का सवर्धक टीका, यदि पूर्व में नहीं दिया गया है तो मियादी ज्वर का सवर्धक टीका तथा 1–2 माह के अन्तराल पर दूसरा टीका।
16 वर्ष	–टिटनस टॉक्साइड का सवर्धक टीका, मियादी ज्वर का सवर्धक टीका।

–उपरोक्त सारिणी के अनुसार टीके दिए जाने चाहिए। यदि टीके की प्रथम मात्रा देने मे देरी हो जाए तो उसी अनुसार अन्य टीके व उनकी मात्रा देने का समय निश्चित करना चाहिए।

–डी पी टी, बी, सी जी व पोलियो वेक्सीन एक समय मे दी जा सकती हैं।

–जिस बच्चे के डी पी टी का टीका लग गया हो और जब कभी उसे चोट लग जाए, उसे धनुषवाय प्रतिरक्षण टीका नही लगाना चाहिए लेकिन चिकित्सक की राय पर टिटनस टॉक्साइड की सवर्धक मात्रा दी जा सकती है। इस प्रकार इस टीके से 5 वर्ष तक प्रतिरक्षण मिल जाता है। ●

संचारी रोगों की रोकथाम के लिए

आपको करना है

1 खाना-खाने से पहले व पाखाना जाने के बाद हाथ साफ पानी व साबुन से अच्छी प्रकार धोने चाहिए।

2, पाखाना शौचालयो मे जाना चाहिए। यदि उपलब्ध नही है तो बस्ती से दूर गड्ढे आदि मे जाएँ।

3 शुद्ध व ताजा खाना खाया जाना चाहिए।

4 खाद्य पदार्थ ढक कर रखें।

5 शुद्ध जल पीएँ। यदि गन्दा व अशुद्ध जल हो तो उसे उबाल कर व छानकर उपयोग मे लाएँ।

6 फल व कच्ची सब्जी अच्छी प्रकार शुद्ध जल से धोकर खाने के उपयोग मे लाएँ।

7 दूध को उबाल कर पिएँ। 6 या 12 माह तक बच्चे को मा के स्तन का दूध पिलाएँ।

8 दूध पिलाते समय बरतन को साफ कर धो लें। बोतल से दूध पीते बच्चे की बोतल व निपल अच्छी प्रकार स्वच्छ गुनगुनाते पानी से साफ करें।

9 बच्चे को सन्तुलित व पौष्टिक भोजन खिलाएँ फल, हरी सब्जियां, दाल आदि दें। अण्डे भी दिए जा सकते हैं।

10 स्वय को मच्छर काटने से बचाएँ अत मच्छर-दानी का उपयोग कर।

11 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे को खसरा, चेचक, तपदिक, बडी खासी, धनुषवाय आदि बीमारियो के टीके दिलाएँ तथा पोलियो की खुराक दिलाएँ।

12 रातौंदे या रतौंधि की बीमारी को रोकने के लिए 6 माह की आयु म बच्चे को विटामिन "ए" के घोल की प्रथम खुराक पिलाएँ फिर प्रति 15 दिन से 5 वर्ष की आयु तक अगली मात्राए दे।

13 बच्चे को संक्रामक रोग होते ही चिकित्सक को दिखाएँ जिससे उसे बचाया जा सके साथ ही रोग प्रसार को रोका जा सके।

14 रोगी के मल-मूत्र को कही दूर फेंकें या गाड दें।

15 बच्चे का शारीरिक परीक्षण नियमित रूप से कराते रहे तथा उसका "स्वास्थ्य ग्रोथ चार्ट" तैयार करें।

आपको नहीं करना है

1 पाखाना घर के आस-पास न जाए।

2 बासी, अशुद्ध व जिस पर मक्खियां भिन-भिनाती हो उस खाने को न खाए।

3 खाने की वस्तुओ पर मक्खियो को न बैठने दें चूंकि वे रोग के कीटाणु अपने साथ लाती है।

4 फर्श पर या अन्य गन्दे स्थान पर पडी वस्तु बच्चे को न खाने दें।

5 अशुद्ध व गंदा जल न पिलाएँ।

6 गला-सडी सब्जी व फल न दें।

7 बाजार की खाने की चीजे मिठाई आदि उपयोग में न लाए।

8 बिना उबाला व अशुद्ध दूध काम मे न लाएँ।

9 छोटे बच्चे को गन्दी व बिना साफ की बोतल से दूध न पिलाएँ।

10 संक्रामक रोग जैसे खसरा, बडी खासी आदि से पीडित बच्चे को दूसरे बच्चो के पास न जाने दे।

11 बच्चे मे गन्दी आदत न पडने दे।

12 बीमार बच्चे, रोगी के कपडे व बरतन दूसरे बच्चो के काम मे न लाएँ

13 कूडा करकट व गन्दी वस्तुएं घर के पास या बस्ती के पास न फेंके।

डॉ योगेन्द्र सिंह भार्गव

जन्म 20 फरवरी, 1941

शिक्षा एम बी , बी एस

लेखन वैज्ञानिक लेख भारत की विभिन्न पत्र ' म लगभग 20 से अधिक प्रकाशित

पुस्तकें प्रकाशित 11

मुख्य स्वस्थ माँ-स्वस्थ बच्चा (स्वास्थ्य एव कल्याण मत्रालय, भारत सरकार द्वारा पु मलेरिया विज्ञान के मूल तत्त्व, पोषण-आ स्वास्थ्य,

Concepts in Malariology, Mother C Child Health Communicable Diseas

सम्प्रति उप मुख्य चिकित्सा एव स्वास्थ्य (स्वास्थ्य) नागौर, राजस्थान ।